

## जेन स्रक्तिया

१ पुण्यस्य फलमिच्छति पुण्य मेच्छति मानया ।

फल मेच्छति पापस्य पाप कुयति घनत ॥ गुणभगपाप

अर्थ—मनुष्य पुण्य वा फल सुख तो चाहते हैं । किन्तु पुण्य = करना नहीं चाहते । और पाप वा फल दुःख कभी नहीं चाहते किन्तु पाप को बड़े घटा से करते हैं ।

२ हेयोपादेयविज्ञानं नो चेद्दध्यथ धम श्रुनो । वासीर्भाग

अर्थ—यदि शास्त्रों को पढ़कर हेय और उपादेय का ज्ञान नहीं हुआ, जिस में आत्मा का हित है और जिस में आत्मा अहित है, यह समझ पदा नहीं हुई ता श्रुताभ्यास में परिश्रम करने व्यर्थ ही हुआ ।

३ कोऽथो षोऽथायन को षधिरो य श्रुणोति न हितानि ।

को भूको य काले प्रियाणि षन्तु न जानाति ॥ प्रनोत्तररत्नमाला

अर्थ—अथा कौन है ? जो न करने योग्य बुरे कामों को करने में लीन रहता है । वहरा कौन है ? जो हित की बात नहीं सुनता । भूगा कौन है ? जो समय पर प्रियवचन बोलना नहीं जानता । सप्रुक्तानां विद्योगदश्च भवतोह नियोगत ।

किमपरङ्गतोऽप्यङ्गी नि सगो हि निवतते ॥६०॥ दानचूडामणि

अर्थ—जिनका संयोग हुआ है । उनका विमोग भी अवश्यम है । अर्थ की बात ही क्या है किन्तु प्राणी सब बृहद् यहा पर । कर इस शरीर से भी अकेला ही निकल जाता है ।

पापाद् दुःखं धर्मात् सुखमिति सधजनमुप्रसिद्धमिदम् ।

तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थो सदा धमम् ॥६१॥ आभानुगासन

अर्थ—पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है, यह बात जनों में भली प्रकार प्रसिद्ध है । इसलिये जो भव्य प्राणी सुख अभिलाषा करता है, उसे पाप को छोड़ कर निरंतर धर्म आचरण करना चाहिए ।

# दैनिक जैन धर्म-चर्या

(जन गहस्थ का प्रतिदिन का धर्म आचरण)

★

जैन धर्म-  
२२००

लेखक —

अजितकुमार शास्त्री, प्रभाकर  
सम्पादक—जैन गजप, दहली ।

★

प्रकाशक —

म. श्री —स्वाध्यायशाला  
श्री पारश्वनाथ दि० जन मंदिर  
सहजी मण्टी (चफखाना), देहली ।

★

मानवी नार

५०००

२६ १० ६४

कालिका सुदी २ मंगलवार  
बीर सत्रन् २४६२

मूल्य

३०

पैसे

आक द्वारा मगाने वाले स-जन ४० नये पस के टिकिट भेजें ।

## विषय-सूची

१ धर्म क्या है	पृष्ठ ६	२६ मन्थोक्त	पृष्ठ ६३
२ जन धर्म का इतिहास	१०	३० पूजन	६२
ससारी जीव	१२	३१ विसर्जन	६६
४ मन्मात्मा परमात्मा	१३	३२ अभिप्रेक करने का उपाय	६८
५ कम अधन	१४	३३ अभिप्रेक पाठ (भाषा)	६६
६ जन धर्म और ईश्वर	१६	३४ दान के समय क्या पठ	७२
७ प्रतिमा की आवश्यकता	१८	३५ शास्त्री जी को नमस्कार	७४
८ ससारिक सुख की प्राप्ति	२०	३६ वारह भावना	७४
९ गृहस्थ के आवश्यक कम	२२	३७ प० बुधजन वृत्त स्तुति	७५
१० रात्रि भोजन	२५	३८ पाशवनाथ स्तवन	७६
११ जन छानना	२७	३९ सामायिक	७७
१२ हमारा गरीर	२८	४० सामायिक म क्या करें	७८
१३ अभिषेक	३०	४१ जपन व मन्त्र	७९
१४ भोजन	३१	४२ माला क १०८ दान क्या	८१
१५ स्तुति	३४	४३ स्वाध्याय	८१
१६ भक्त और भगवान्	५	४४ अक्षर पाठ	८४
१७ भक्ति और विद्वान्त	४	४५ पत्र श्रित्त	८५
१८ पूज्य प्रतिमा	४१	४६ दान ण धर्म	८६
९ मूर्ति पूजा का आरम्भ	४२	४७ व्रत नियम	८७
२० तीर्थकर	४५	४८ सन्धिघार	८९
२१ तीर्थकरों के ४६ गुण	४६	४९ अभिवन्त पद्धति	९१
२२ तीर्थकरों के विह	५२	५० दुःखमन	९२
२ सिद्ध परमेश्ठी	५३	५१ जला की मूत्र मा पनाएँ	९४
२४ आवाय	५३	५२ मूत्रक प्रकरण	९६
२५ उपाध्याय परमेश्ठी	५५	५३ शिवक प्रतिप्रमण	९८
२६ साधु परमेश्ठी	५७	५४ वराह्य भावना	१०१
७ मर्दिन क्या है ?	५८	५५ सिद्धचक्र की स्तुति	१०१
२८ दमन विधि	६०	५६ आरती	१०१

## आद्य वक्तव्य

अप्य भावा की अपणा मनुष्य भव आम-उन्नति क लिये अधिर उपयोगी है, अत मनुष्य जीवन का पर्येक क्षण जमूल्य है इसका व्यय माना बनी भारी भूल है। एम कारण आम दिन के हिसा भी काय में जग भी प्रमा (आनन्द) न करना चाहिये।

भोजन विषय मरन नीर धूमना फिरना आदि काय मनुष्य म वही अच्छा गुण-गुणी शिया करत है, अत माना पीना, दृशिया तृप्त करना, धन मन्वय राना गाना रपन करना काई महान् काय नही कगारि इस आत्मा की तपि नहा हानी। आमा की तपि क निय धम न आगधा उप योगी है।

आ ध्यति विरतर आम धम-मा न न लिये घर परिवार का छोरपर माधु न उन रचना हा उमकी गह-वाधम म न्द घर धम आराधना करना चाहिये। आत्मा को परमात्मा वान के लिये परमात्मा की पवित्र मूर्ति अपन मामने रखकर उगक समान स्वय धनन की भावना रखनी चाहिये। एकी उद्देश्य मे मदिन बनाकर वगी प्रतिमा विराजमान करना जिनवाणी का अभ्यास सामाधिर (ध्यान आदि नय विद्ये जान है।

मनुष्यके जय तक हाय, पर और नम काम देत है नर नर उमका कर्तव्य है कि अपनी आमा की परमात्मा की आर स जाने क लिये मन्दिर में जाकर वीनरग परमात्मा का विाय के साथ एत-पूजा कर विगम पुन्द आमा का पुगत मित। इस कारण प्रातरान अय सामारिक काय करत म पन्नि भगवान् का दान पूजा अयस्य करना चाहिये अपने मुर स भगवान की स्तुति पढ़कर अपनी जीभ पवित्र करना चाहिये। पना नहीं जात जा यह गुन अवसर मिल रहा है वह तम भी मिल सकगा या नहीं।

मुनि भी जिनेन्द्र भगवान का दान, विाय, स्तुति तथा भाव पूजन करते हैं तब गृहस्थ को तो यह और भी अधिक करना चाहिये। पहाड़ा गगज, दिल्ली के तथा अन्य अनेक धार्मिक प्रिय मित्रों ने दसों पूजन की विधि के विषय में कुछ संक्षेप से लिखने की प्रेरणा की थी उनके अनुरोध से इन पुणित काय में मेरा कुछ समय आया है। सम्भव है इसमें प्रमाद-वगैर भुटिया रह गई हो, बिना गगजन उनकी सूचना दें जिससे उन्हें भविष्य में सुधारा जा सके।

भाद्रपद मुदी ५ बुधवार  
वीर सं० २४८१  
२१-९-५५

अजितकुमार शास्त्री  
सम्पादक जन गजट  
दहली

### इस पुस्तक का प्रकाशन

प्रथम संस्करण मनु	१९५५—२०००
द्वितीय ' "	१९५६—५०००
तृतीय ' "	१९५७—५०००
चतुर्थ ' '	१९६०—३०००
पाँचवा ' '	१९६२—४०००
छठा ' "	१९६४—६०००
सातवा " '	१९६५—८०००
	कुल—३३०००

### पुस्तक प्राप्ति तथा पत्र व्यवहार का पता—

श्री करम चन्द जी जैन  
मसस महावीर प्रसाद एण्ड सस  
चावडो बाजार, देहली

श्रीकृष्ण जैन,  
४५३७ पहाडी धीरज  
देहली ६

## दो शब्द

साधारण व बहुगहारा धम्मो अर्थात् वस्तु के स्वभाव को धम बताया है। जो कि वस्तु का स्वभाव है वही उसका धम कहलाता है। जैसे अग्नि का स्वभाव गर्मी तथा तेल का स्वभाव तीक्ष्णता है। यही उन्हे धम है। इसी प्रकार ज्ञान का स्वभाव शांतिपूर्ण है पर ज्ञानार्थ्याणि तर्कों के कारण वह स्वभाव विरत हो रहा है। तर्कों का दूर करने आत्मा को पवित्र बनाते जोर उन्हे ज्ञानार्थ्याणि का प्राप्त करने के लिये व्रत उपवास मन्त्रोच्चारण आदि जा साधन बनाये गये हैं। उन्हे भी धम कहा गया है क्योंकि ये आत्मा के लिये धम का प्राप्त करने में सहायक हैं। आत्मा के लिये स्वयम् की प्राप्ति के लिये मानव जीवित में ही विनाश प्रयास किया जा सकता है।

प्रत्येक प्राणी मुक्त चाहता है पर जब तक वह मात्र माया में पन्ना रहता है और यानिषा में धमण पर दुःख उठाना ही रहता है। तब तक के लिये म धूमने तथा मुक्त प्राप्ति करने के लिये आधम में गहम्य तथा मुनि धम का प्रतिपादन किया गया है। मुनिधम मगार-न्यागी स्थितियों के लिये है बाकी लोग घर में रहकर धर्म सचन करते हुए विषय-वश्याय का धम करके आत्म-रति के मार्ग में लग सकते हैं।

धर्मों में गहम्य जीवित की बहुत प्रशंसा की गई है। सफल गहम्य-जीवन मुनि जीवित की भीड़ी है तथा उन्हे परम साहायक है। मुनि लोग अपने धारणादि के लिए गहम्या पर ही आश्रित होते हैं। अब उचित रूप में जीवित विज्ञान वाला गहम्य ही महान् पुण्य का भागी बन सकता है और धीरे धीरे धर्म-याग करके हुए मुनि-व्रत धारण कर आत्म-वश्याय के मार्ग में पुण्य तथा अचम-हा सकता है।

वर्तमान में मानव भौतिक पदार्थों में लीन होकर अपने धर्म का भूलत जा रहे हैं। उनका अपनी धार्मिक क्रियाओं का ठीक ज्ञान भी नहीं हो पाता। जत मरल गदा में गृहस्थों के कर्तव्य पर प्रकाश डालने वाली एक पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। श्रीमान् पं० जितकुमार शम्भो मध्यात्क जा मजट ममाज के प्रतिष्ठित विद्वान तथा मुलेखक हैं। आपने बहुत ही उपयोगी साहित्य का मजन किया है। यह पुस्तक लिखकर तो आपने एक बहुत बड़ा काम ही पूर्ण किया है। थोड़े समय में ही पुस्तक का यह मातर्वा सम्पूर्ण निरतना पुस्तक की उपयोगिता का एक बड़ा प्रमाण है।

श्री बाबू श्रीचरणजी का इस प्रकार के उपयोगी साहित्यका प्रकाशन कर अल्प मूल्य में उसे सबगाधारण तब पहुंचाने का बड़ा चाख और लगन है। वे इसका लिये मदा प्रयत्नशील रहते हैं। आपने कई उपयोगी प्रकाशन किए हैं। इस पुस्तक की ३३००० प्रतियाँ छप चुकी हैं। आपका प्रयत्न अत्यंत सराहनीय है।

स्वाध्यायशाला श्री पार्वनाथ दिगम्बर जत मन्दिर बफ खाना, मन्जी मण्डी-देहली के धर्म प्रमी मजानों ने इस काम को अपने हाथ में लेकर बहुत उपयोगी धाय किया है। आशा है नि वहाँ से ऐसे प्रकाशन बराबर होत रहेगे।

अत म मैं धार्मिक सज्जनो से प्रायना करता हूँ कि व इस उपयोगी पुस्तक से लाभ उठाव।

होरालाल जन 'कौशल  
(५ फरवरी १९६५) (साहित्यरत्न शास्त्री 'यायतीथ)  
अध्यक्ष—जन विद्वत्समिति, देहली





- ११) सा० फिरोजीलाल जग, पहाडी धीरज, देहली ।  
 ११) मा० जूगानी सुपुत्री बा० श्रीकृष्ण जन पहाडी धीरज, दे० ।  
 ११) सा० महावीरप्रसाद मुरदाचंद जैन पहाडी धीरज, दे० ।  
 ११) सा० सुगनचंद जन, (अखवर वाले प० धी० दे० ।  
 ११) सा० गिरजीलाल जग, मदर पहाडी बाजार, देहली ।  
 ८) सा० पन्नालाल २), सा० मुरद्रमुमार ६) प० धी०, देहली ।
- ११६) युवा

आर्थिक सहायता प्राप्त होने पर भी पुस्तक का कम-से कम मूल्य इस कारण रखा गया है कि पुस्तक लेनेवाले उसका सदुपयोग करें। बिना मूल्य की पुस्तक का लोग उचित उपयोग नहीं करते। ज्ञानप्रचार ही हमारा उद्देश्य है, व्यवसाय नहीं। इसी कारण हम कम से कम मूल्य पर साहित्य वितरण करते हैं। जो धर्म प्रेमी सज्जन ऐसे प्रकाशन के प्रचार में सहयोग देना चाहें वे इस प्रकाशन की अधिक से-अधिक प्रतिर्या खरीदकर वितरण कर सकते हैं। अथवा प्रकाशन में यथाशक्ति आर्थिक सहायता निम्नलिखित पते पर भेजने की वृत्ता करें।

श्री कृष्ण जन

मन्त्री— श्री शास्त्र स्वाध्याय शाला  
 श्री पावननाथ टि० जन मंदिर  
 बाबाजी की बगीची बफवाने क पीछे  
 सब्जी मण्डी देहली ६ ।

# दैनिक जैनधर्म-चर्या

★

## धर्म क्या है ?

पशु का स्वभाव पशु कहलाता है । जैत अग्नि का स्वभाव धम गर्मी है । उसी तरह आत्मा का स्वभाव धरना, देसना जानना है । आत्मा का शुद्ध स्वरूप सम्यग्ज्ञान (सच्ची धरना Right faith) सम्यग्ज्ञान (सत्यज्ञान Right knowledge) सम्यक्चारित्र (आत्म शुद्धि करने वाला सच्चारित्र Right conduct) के द्वारा प्राप्त होता है । इस कारण इन ताना का भी धर्म कहते हैं । आत्मा को उनसे शुद्ध बनाने वाले तथा कामल सरन परिणामों को गत्य अहिंसा आदि दायों को भी धर्म कहते हैं । इन सब धर्म स्वरूपों के दायों में अन्तर है भाव पक्षका एक ही है ।

### जन धर्म

आत्मगुणों (विकारभावों) को जीतने वाले को जिन 'जयति' (जि जन — विजेता) कहते हैं । महान् विजेता त्रिनेत्र भगवान् ने जो अष्टगुण महान् विजेता—परमात्मा बनाने वाला माग्य बतलाया उसका जन धर्म कहते हैं ।

### तीन चिह्न

जन धर्म अनुयायी के तीन विशेष चिह्न हैं—१—रात्रि में भीजन २—

न करना २—पना कड़े से छानकर पीना ३—प्रतिदिन आर्यभट्ट  
विद्या विद्या मन्वान् के दशन करना । इसके विवाह प्रत्येक  
मास मासा (गुरु) मधु (मधु) गुरु ३ उम्बर कद (बहु, पी  
ऊपर दानी बजोर गुरर और कद्दमर) इन पाठ बीसो को भी  
गना । छोटे तथा बड़े सभी वन बीसो को सरस से (इराजान) के  
मारना भी जन धर्मानुसायी का विद्व है ।

### जैन धर्म का इतिहास

इसी युग में आज से बरोहो वर्ष पहले पयाप्पा में राजा नाभिर  
को रानी महेवी के उदर से एक महान् सौभाग्यवापी पुत्र का जन्म हुआ  
जिसका नाम 'शुभभाष' रखा गया । शुभभाष जन्म से ही अवि  
पानां थे । उन्होंने गृहस्थाश्रम में रहकर मनुष्यो को रोती करता, सिद्ध  
पढ़ना, तरना बतन बनाना आदि कताये गिननाइ । बहुत दिनों तक  
गण्य करने के बाद एक दिन राजसभा में भाषती हुई भीसो ११ के  
की मृत्यु देखकर सत्तार के नामा से उनका शिष्ट उषट गया और राजा  
राज अपने बड़े पुत्र मरत को मौर कर मंग गाम्भु बन गये । तब उरह  
व्युत्त समय तक कठिन तपस्या की और मोक्ष मोह समता आदि वि  
भावा पर विजय पाकर पूण प्राप्ता पूर्ण गुणो और अरत मरि ल  
धीतराय हो गये इस कारण आपका नाम गिा (विनेता जीतो नाम  
प्रसिद्ध हुआ ।

उस समय उद्दाने मममरण नामक विद्याप व्याख्यानसभा में वे  
मनुष्य मनु मसियो आदि सभी गिा को समान रूप में मान्य उर  
का उपास गिया इस कारण उर बननाथ नाम का नाम । तब  
प्रक्षपात हुआ । इस तरह इस समय में प्रजाता गीत मर्म को हीन भवत  
अपभवाय न जाती है । मरत मीन म व इस युग के मय म प्दो म  
उपदेशक (सी ११२) हुए है ।

मगरान् शुभभाष का पुत्र भग्न इस युग का मय गीत म मय

सम्राट हुआ उसी के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है। भारत के सोने के महा बलवान भाई बाहुबली ने भी एक वष तक अद्रिग सभे रहकर तपस्या की थी और मुक्ति प्राप्त की थी। भगवान् ऋषभनाथ की ८६ फुट ऊँची प्रतिमा बलवानी के समीप त्रिपुरा पर्वत पर है। बाहुबली की ५७ फुट ऊँची पाषाण की मूर्ति अरण्य बेनगोना (मयूर) में है।

मृगश्रोतग (मिथ) में पृथ्वी ग्याप्तन पर जो पाँच हजार वष पुरानी बहुत सी पीढ़ें निकली है उनमें से कुछ तेजी मुहरें (सीलें) भी हैं जिन पर भगवान् ऋषभनाथ की नमन खाड़ी मूर्ति बनी हुई है जिसमें सिद्ध होता है कि भगवान् ऋषभनाथ की पूजा पाँच हजार वष पहले भी भारत में होती थी।

भगवान् ऋषभनाथ के मुक्त होने के पीछे इसी युग में अद्रिनाथ आदि २३ तीर्थंकर और हुए उद्धाने भी अपने अपने समय में उसी जन धर्म का प्रचार किया। राम लक्ष्मण के समय में २०वें तीर्थंकर श्री 'मुनि मुद्रतनाथ' थे। यह बात योगवाणिष्ठ ग्रंथ के बीच लिखे श्लोक से सिद्ध होती है —

माह रामा न म वांछा भारतु ध न मे मन ।

शान्तिमाप्सितुमिच्छामि स्वात्मन्येव तिनो यथा ॥

सत्तार स उव वर रामचंद्र कहते हैं—मैं राम (जिसमें योगीजन रमण करें) नहीं हूँ न मुझे किसी तरह की चाह है न किन ही पदार्थों में मेरा मन लगता है। मैं तो अपनी आत्मा में ही धार्ति पाना चाहता हूँ, जैसे कि जिनस्व याना—रामचंद्र के समय में भी 'विनदेव' (तापकर) थे।

नारायण कृष्ण के खबर भाई भगवान् नेमिनाथ जन धर्म के प्रचारक २२वें तीर्थंकर के वंश में तथा पुराणों में भगवान् नेमिनाथ का भी नाम आया है।

Some scholars of history have now begun to admit that 22nd तीर्थंकर ज्ञानमिनाथ is a historical

figure and say that the «aint Ghor Aungiras who taught Krishna the lesson of आत्मज्ञान was none else but नेमिनाथ himself

भगवान् 'पाश्चिमाय २३वें तीर्थंकर के और अंतिम तीर्थंकर कृष्ण पुर (बिहार) के राजा गिद्धाय के पुत्र भगवान् महावीर हुए । उ हाने अब से ढाई हजार वर्ष पढ़न सबन चीतराग व पासन के बा ३० वर्ष तक जैन धर्म का प्रचार किया ।

भगवान् महावीर की मुक्ति हो जाने पर था कुम्भकुम्भ समगमभट्ट अकसक, विद्यानाथ आदि महान् आचार्य जन धर्म की प्रभावना करने रहे । इस तरह जन धर्म एतिहासिक दृष्टि से समार के सब धर्मों में प्राचीन है ।

### सप्तारी जीव

सप्तार में कम अल्पतम के कारण इस जीव को रहने के नियमों पर मिलता है उसका नाम सप्तार है । इस अस्थायी घर (सप्तार) का अपनी निजी वस्तु मान करके यह जाव सप्तार की गुप्त दनवाली धीमा—वस्तु भोजन सबान धन मित्र पुत्र स्त्री आदि में प्रम करता है और सप्तार को दुःखदायक वस्तुओं से द्रव तथा धृष्टा करता है उनका अपना शत्रु समझने लगता है इसी मूल कारण से यह जाव सप्तार में शत्रु मित्र का गाना-बाना बुनकर काम शोध लोभ मोह अहंकार ममकार द्रम द्रव ईर्ष्या, छत्र दम्भ हिंसा धीरी काम-भवन परिषट्-सवय आदि अनेक तरह के काम करता है और अपने पसन के नियम कर्मों का जाव तयार करता रहता है । ऐसे कम गान में फल हुए जीव आत्मा (साधारण) बन जाने है ।

### महात्मा

जिन बुद्धिमान स्त्री पुरुषों को विवेक द्वारा आत्मा और सप्तार का

न जान हा जाता है वे शरीर का अपनी वस्तु नहीं समझते, इसी कारण शरीर से उनकी मोह ममता हट जाती है । शरीर की तरह वे संसार की अन्य वस्तुओं की भी अपनी नही समझते विषय भागों में भी उन्हें रुचि नहीं रहती । आत्मा का गुड करने के लिये तप त्याग समय का अभ्यास करते हैं । ममता भाव का उनमें उन्मूलन होता है इसलिए संसार में उनका न कोई अपना मित्र नीचता है न कोई शत्रु । गान्धि बराबर बड़ाने वाली बातों में उनकी रुचि बढ़ती जाती है । यज्ञ व गृहस्थाश्रम में निष्ठा कारण रहते हैं ता घर का काम बड़ी उत्साहीनता से करते हैं उनकी यही दृष्टि रहती है कि मुझे कब ऐसा अवसर मिले कि घर-बार छोड़कर एकांत में आत्म साधना करना शुरू । जो लोग घर बाह्र छोड़ सकते हैं व सब-कुछ काय छोड़कर अपना सारा समय आत्म-साधना में लगाया करते हैं । साधारण यह है कि भेद-विज्ञान हो जाने पर मनुष्य का ध्यान बाहरी बातों से हट कर आत्मा की ओर लग जाता है । ऐसे मनुष्य महात्मा (विशेष उच्च) होते हैं । उनका कम-बधन होता ही जाता है ।

### परमात्मा

संसार के सभी पदार्थों में मोह ममता का सम्बन्ध तोड़कर जब माधु बन करके विरक्त पुण्य तप त्याग समय के द्वारा तथा आत्म साधना में लीन हो जाते हैं तब उन में नया कम-बधन होना रुक जाता है और पुराना कम-बधन भी टूटता जाता है । इस तरह उनका आत्मा गुड होना चला जाता है । आत्मा के ज्ञान दान सुख सन्तोष धारता धीरता गम्भीरता आदि गुण विकसित होते जाते हैं । इस प्रकार जब महात्मा अपनी शुद्धि करते-करते कम-बधन से छूट कर पूर्ण शुद्ध हो जाता है तब वह 'परमात्मा' (सबसे उच्च शुद्ध आत्मा) बन जाता है उस समय वह जन्म मरण में छूट कर अजर-अमर बन जाता है अपना जीव माह से छूट कर सबज्ञ बीजराग बन जाता है । तब उनमें

विकार, दौष, बलश नहीं रहने पाता । निरञ्जन निर्विकार सच्चिदानन्द  
हो जाता है समस्त दुःखों से छूट कर अनन्त मुक्ति बन जाता है ।

## कर्म-बन्धन

स्वतन्त्रता का रोझने वाले साधन को बन्धन कहते हैं । ज  
धनराज सिंह को पित्रोडे में बन्धन कर लिया जाता है । बहू पित्रोडे  
बाद महान् पराक्रमी सिंह अपनी इच्छा से मनचाह स्थान पर घूम पि  
नहीं पाता न मनचाहा आहार भोजन पान कर पाता है । अतः २  
जब पित्रोडा उस पराक्रमी सिंह का बन्धन है । इसी तरह पाप का बन्धन  
महान् बलवान् जीव भी कर्म-बन्धन से पराधीन बना हुआ है । कर्म  
निमित्त से जीव को मरक म भी जाना पड़ता है और कीड़े मकोड़े आ  
नीच योनिया में भी रहना पड़ता है । इसलिये जीव को परलोक बन  
वाला बन्धन कम है ।

पदार्थ (Matter) के विशेष लक्षण के स्वभाव (परमाणुओं  
समुक्त समूह हैं । अतएव बाव म  
कार्माण समुदाय  
की शक्ति होती है  
शक्ति होती है  
शक्ति मन, वचन,  
करने का काम

तदनुसार  
अथवा वचन से  
बुरा कार्य करता है  
रूप योग





मनुष्य आयु का बंध होना है। अधिक शान्त भावों से तथा सरा धर्माचरण से देव आयु का बंध होता है।

१ नाम—जा ससारी जीव के नियं शरीर बनाता है। शुभ नाम कम के उन्म से अच्छा सुंदर स्वस्थ शरीर बनाता है। अशुभ नाम कम के उन्म से पुरा अमुन्म शरीर बनाता है। अपने तथा अय जीव का शरीर-सम्बन्धी अच्छी भावना करने से शुभ नाम कम और दुर्ग भावना करने से अशुभ नाम कम का बंध होता है।

७ गोत्र—जा लोक प्रशसित ऊँचे कुल म या लोकनिच नीच कुल म जीव को उत्पन्न करता है। मनुष्या म ऊच गोत्र नीच मात्र दोनों गते हैं। देवों म ऊच गोत्र का उदय होना है। पशुओं तथा नरक म नीच गोत्र का उन्म होना है। अपने कुल जाति वण का अभिमान कम से नीच गोत्र का बंध होना है। अपने उच्च कुल का अभिमान न करने म विनयभाव से रहने से उ नत काय करने से उच्च गोत्रम का बंध हाता है।

८ अन्तराय—लाभ होने बल बढ़ने भाग उपभोग की सामग्री प्राप्त हाने तथा दान करने की भावना से जो विघ्न उपस्थित करता है वह अन्तराय कम है। दूसरों के बल भोग उपभोग धन लाभ आदि से विघ्न डानने से अन्तराय कम का बंध हाता है।

यह आठ कमों का संक्षेप से विवरण है। जिन कार्यों क करने से इन कमों का बंध हाता है यदि बसे कार्यों को न करके उनसे उलट अच्छे काय विये जावें तो इन कमों का शक्ति घटती है और आत्मा की शक्ति बढ़ती है। यदि रागद्वेष आदि दुर्भावनाया को न करके आत्म ध्यान किया जाता है तो इस कमबंधन का शय हो जाता है।

### जनधर्म और ईश्वर

जन धर्म की यह एक विशेष मायता है कि यह ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हुए भी उस किता अधिक विशेष से ही के इत नहीं

मानता है। बल्कि प्रत्येक आत्मा में ईश्वरत्व गति स्वीकार करता है। वह किसी एक अनादि सिद्ध परमात्मा को तो नहीं मानता परंतु अब तक कमरूपी मल को अलग करके जितने आत्मा मुक्त (परम आत्मा) हो चुके हैं और आगे भी होते रहेंगे उन सिद्धान्त अनुसार वे सभी मुक्तात्मा सिद्धात्मा परमात्मा भगवान् या ईश्वर हैं। वे गणद्वयानि १८ दोषों से छूट जाते हैं तथा उनका अनादि ज्ञान ज्ञान मुख्य वीर्य आदि आत्मिक गुण प्रकट हो जाते हैं। वे लोक के अपभाग में स्थित सिद्धान्त में जा विराजते हैं। ससार के किसी भी कार्य में उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता तथा जिस प्रकार धान में छिन्नका अलग हो जाने से चावलों में उगने की शक्ति नहीं रहती उसी प्रकार ससार में उत्पन्न होने का कारण कम रूप बीज नष्ट हो जाने पर सिद्धात्माओं को ससार में फिर कभी भी जन्म नहीं लेना पड़ता और वे सदा अपने निराकृत मुख में लीन रहते हैं। कम शत्रुओं को जीतने के कारण उनका जित या जिनेन्द्र भी कहने हैं।

उनमें से कुछ मुक्तात्माओं को जिहाने मुक्त होने में पूर्व पाणिपति को ससार में दुःखा से छूटने और मुक्ति प्राप्त करने का माय बतलाया था जो धर्म में सीधे-से माना गया है। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अब सर्पिणी में एसे तीर्थकरा की संख्या २४ होती है। उन्हीं की अज्ञान (मोह जाने से पूर्व) अवस्था की मूर्तियां जिन मूर्तियों में सिद्धात्मा हानी हैं।

### हमारा लक्ष्य

जो स्त्री पुत्र ससार की अज्ञानि व्याकुलता से छूटना चाहते हैं उनका लक्ष्य वह परमात्मा ही होता है

Where is Thy God ? I find no trace of it  
in this absurd world

—Lala Lajpat Rai in १९०६

सुद्धि होकर भी जन्म-मरण अज्ञान दुःख बनना दूर हो सकते हैं। यह अपने आपको पूर्ण शुद्ध निर्विकार बीतराग परमात्मा बनाना ही सुद्धि मान् स्त्री पुरुष का सत्य हो सकता है।

### सत्य प्राप्त करने का साधन

अपने आत्मा का पूर्ण शुद्ध बुद्ध मच्चिन्मनः परमात्मा बनाने के लिये अपनी दृष्टि बाहर से यानी समार की ओर गे हटाकर अतरंग यानी आत्मा की ओर करनी चाहिये। ऐसा करने पर ही शरीर पुन मित्र धन आदि से मान् भ्रमता दूर होती है।

इन कार्य को सिद्ध करने के लिए एक तो आत्मा का और अनात्मा (जड़ पदार्थ) शरीर धन ममान आदि का तथा महात्मा परमात्मा का कम के धन करने मुक्ति होने आदि ज्ञान का आवश्यक ज्ञान होना चाहिये। उस ज्ञान के अनुसार अपनी श्रद्धा (विश्वास भावना) बढ़ाने हो जानी चाहिये। आत्म श्रद्धा ही सत्य ज्ञान को स्थिर रखने की भूमि है और आत्म श्रद्धा ही ज्ञान पर उनके अनुष्ण ही आत्मा को सतार से छुटाने के लिये किया (चारित्र्य) होने जगती है।

किन्तु आत्म श्रद्धा को अटल बनाने के लिये बाहरी साधन या आश्रय (अवलम्बन मन्त्रा) भी होना आवश्यक है क्योंकि जो मन सग बाहरी वस्तुओं में भ्रमता है उसको आत्मो-मुक्त (आत्मा की ओर) करने के लिए साधन भी बाहर का ही दीक रहता है। यह बाहरी साधन ही बीतराग परमात्मा की मूर्ति।

### प्रतिमा की आवश्यकता

मन को बाहरी पदार्थों में जगमाने का काय स्थात इन्द्रिय अथ पदार्थों (वस्त्र भूषण लक्ष तथा स्त्री पुरुष के शरीर आदि) को छू कर रसना इन्द्रिय भोजन पान आदि का स्वाद लेकर नासिका इन्द्रिय सूष कर नेत्र इन्द्रिय अथ पदार्थों का रंग रूप देखकर और कान अच्छे स्वर

गीत धर्म मुन करके करते हैं। मन भी इन्हीं के विषय भोग में मग्न उलझा रहता है।

इस उलझान का काम सब में अविष्य नेत्र कल्पित करती है क्योंकि अय इन्द्रिया का ता अपना विषय धम्नु कभी-कभी मिला करती है परन्तु नेत्रों को ता अपने लिये मन के पलायन मग्न मित्तन रहने हैं। जागने समय तो धम्ने ससार को बाहरी वस्तुओं का देखती हैं किन्तु मो जाने पर भी शरीर के बाहरी नेत्र बन्द रहकर भी जीव के भीतरी नेत्र काम करते है जिसके प्रभाव में स्वप्न-दोष आदि काम हो जाने हैं। इस कारण मन का मुलभान के लिये विशेष रूप में नेत्र इन्द्रिय को मुन भाना चाहिए।

नेत्र त्रिम तरह जीविन सुन्दर स्था पुरुष को देखने के लिये साया विन रहत है इसा तरह निर्जोत्र सुन्दर स्त्री पुरयो के विन मूर्ति श्रादि देखने के लिये भा आकर्षित (बिचने) हुआ करत है। अन्वित्र (सिनमा) में जड छाया चित्र ही शीघ्र पढ़न है उग मितेमा को देखकर ही मन में ओष तरह की तरफें उठा करती है। कामी स्त्री पुरुष अपनी कामवासना जाग्रत रहने के लिये कामातुर स्त्री पुरयो के चित्र अपने यहाँ मजाकर रखते हैं त्यागी विरागी अपने यहाँ साधु महात्माओं के चित्र मजाते है सरकार अपने मंग के उनाआ तथा धीरों की मूर्तियाँ सब साधारण स्थानों पर स्थापित करती हैं।

तन्नुसार मन को अतमून (आत्मा की आर) करने के लिये बीत राग विषय आत्मा परमात्मा की मूर्ति नेत्रों के लिये फायकारी है। क्यों कि आत्मा का जा स्वरूप (वीर वीर गम्भीर गाल राग-द्वय रहित स्वात्म-सीन) शास्त्रों में पढ़ा जाता है उसका समझने के लिये वसी मूर्ति भी तो आँखों के सामने आनी चाहिए। जैसे कि भूगान का ज्ञान मान चित्र (नक्शे) के बिना देखे नहीं हुआ करता। हाथी सिंह आदि की गवल सूरत का ज्ञान कराने के लिये या प्रबंज (मूनक) पक्षी का बोध

कराने के लिये उन मिह पूजन स्त्री पुरुषों के विभिन्न मूर्ति आदि स्थितान आवश्यक होते हैं। उगी तरह अपने लक्ष्य परमात्मा का ज्ञान कराने के लिये परमात्मा की वीतराग मूर्ति की आवश्यकता है।

वीतराग प्रतिमा का स्नेह ही मन में यह भावना जमता है कि अपने आपसे बाहरी वस्तुओं का सम्पर्क में अलग रखकर हम वीतराग विधि अर्थात् परमात्मा की मूर्ति की तरह शांत और निभय आत्मा में लीन होना चाहिए तथा हुए बिना सांसारिक व्याकुलता दूर न हो सकेंगी।

### भावना कसी होनी चाहिए

अतः परमात्मा की प्रतिमा का स्नान पूजन ध्यान करते हुए अपने मन के विचार उगी वीतराग प्रतिमा के अनुसार रागद्वेष मोह ममता रहित अपने आत्मा का शुद्ध करने के होने चाहिए। भगवान की मूर्ति हमारी भावना को शुद्ध करने का बाहरी साधन है।

वीतराग अर्थात् दर्शन पूजन विचार करने में जा परिणाम निम्न होते हैं उनमें अशुभ (दुःखदायक) कम शुरू जाते हैं या वे बन्द कर शुभ (सांसारिक सुखदायक) हो जाते हैं अशुभ कर्मों की शक्ति क्षीण होती है और शुभ कर्मों का बल बढ़ जाता है। हम ढंग से आत्मशुद्धि के साथ-साथ सांसारिक सुख प्राप्तिकी विधि भी बन जाती है क्योंकि शुभ कर्मों के उदय में ही सुखदायक पदार्थों का समागम हुआ करता है।

आत्मा के परिणामों को शुद्ध या (मत्कपाय रूप) शुभ करने के लिये भगवान की मूर्ति और कुछ नहीं देती न दे सकती है। इस कारण वीतराग भगवान का स्नान पूजन चिन्तन भक्ति करने का लक्ष्य आत्मा का शुद्ध शांत निर्विकार वीतराग बनाने का ही रचना चाहिये।

### सांसारिक सुख की प्राप्ति

जिस प्रकार किसान अन्न उत्पन्न करने के लक्ष्य से बहुत परिश्रम

कोई घर व्यापार आदि का कार्य करने से पहले भगवान् का पूजन करना अत्यन्त आवश्यक है।

### गुरु-उपासना

समस्त परिग्रह रहित निग्रह त्रिगम्बर मुनि तथा ऐतक धुल्लर आदि का सुल्लिषा आदि प्रती त्मागी का विनय के साथ उपदेश सुनना उनकी सेवा-पुश्रूपा करना उनकी आवश्यकता अनुसार कमण्डलु पीछी गास्र आदि उपकरण देना। विधिपूर्वक भक्ति से शुद्ध भोजन करना आदि गुरु उपासना है। यदि निकट में गुरु न हों तो एकान्त में बड़ी भक्ति अनुराग से उन की स्तुति पत्नी चाहिये।

### स्वाध्याय

प्रतिदिन जिनवाणी में गास्रा का पत्ना पढ़ाना, सुनना सुनाना पूछना पाठ करना चिंतवन करना चर्चा करना स्वाध्याय है।

स्वाध्याय ज्ञान बढ़ाने का सर्वम अच्छा सुषम साधन है।

### सपम

सावधानी से देखभाल कर कार्य करते हुए जीवी की रक्षा करना तथा अपनी इन्द्रिया को वश में करना मयम है। उनके लिये प्रतिदिन भोजन पान वस्त्र आभूषण खन देखने माना सुनने काम मेवन करन सधारी करने आदि का नियम करते रहना चाहिये कि मैं आज इतनी बार भोजन करूंगा ग्रहचय में रहूंगा या एक बार विषय सेवन करूंगा, इतने पन्थ सार्कंगा। एक मेन देखूंगा (या नहीं) आदि।

### तप

इच्छाश्रा का रोकना तप है। इसके लिये भोजन कम करना एकागत, रमत्याग आदि करते रहना चाहिये। मिनेमा आदि के देखने आदि की इच्छाश्रा का रोकना चाहिये।

## सारांश

जिस महारामाज्ञा तीर्थंकरां आदि ने राज धर्म परिवार आदि संवत्सरीय मुक्त सामग्री छोड़ कर बठोर सपरया करके परमात्मा पर प्राण किया था, अर्हंत अवस्था (जीवन मुक्त गंगा) में उन्होंने आत्म सुद्धि का मांग समस्त सत्तार को दिनाया था फिर पूण मुक्त होकर सत्तार से अदृश्य हो गये उनका ध्यान प्राप्त करने के लिये उनकी अहन्त दशा की धीतराग प्रतिमा बनाई जाती है। उस धीतराग प्रतिमा का महत्त भगवान की भावना से आत्म सुद्धि करने के लिये दर्शन पूजन विनय भक्ति चिंतन करना चाहिये।

## गृहस्थ के ६ आवश्यक कर्म

जिस प्रकार मुनियों के प्रतिदिन आचरण करने के लिये ६ आवश्यक कर्म होते हैं उसी प्रकार गृहस्थ के भी ६ आवश्यक कर्म-वाच्य हैं।

१ देवपूजा २ शुद्ध उपासना ३ स्वाध्याय ४ सधर्म ५ तप और ६ दान।

### देव पूजा

अपने आदर्श देवाधिपति श्री १०८ त्रिनेत्र भगवान् की अष्ट द्रव्या से पूजन करना 'देवपूजा' है। गृहस्थ का यह मुख्य कर्म है। यदि किसी कारणवत् अष्ट द्रव्य से पूजन न कर सके तो स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर मन्दिर में जाकर बहुत विनय और हृष के साथ भगवान् का दर्शन करें। दर्शन स्तवन ममस्वार प्रशंसा आदि भा पूजा का ही एक छोटा-बम श्रेणी का पूजन है। अपने आत्म के स्मरण के लिए मनुष्य को प्राप्त वाच्य गवसे प्रथम शुभपदाथ को दग्धना चाहिये धीतराग भगवान् से बढ कर शुभ दर्शन जोर किया हो सक्ता है ? अतः अथ

कोई घर ध्याहार आदि का वाय करने से पहले भगवान् का पूजन दान करना अत्यन्त आवश्यक है ।

### गुरु-उपासना

गमन्त परिग्रह रहित निग्रह दिगम्बर मुनि तथा एक शुल्का अधिक शुल्लिक आदि कृती स्थायी वा विनय क साध उपदेश सुनना उनकी सेवागुभ्रूषा करना उनकी आश्रयकता अनुसार कमण्डलु पीछी गास्त्र आदि उपकरण देना । विधिपूर्वक भक्ति सं गुरु भोजन कराना आदि गुरु उपासना है । यदि निवृत्त म गुरु न हूँ तो एकांत म बड़ी भक्ति अनुराग से उन की स्तुति पढ़नी चाहिये ।

### स्वाध्याय

प्रतिनि जिनवाणी म गास्त्रो का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना पूछना पाठ करना चि तथन करना शर्चा करना 'स्वाध्याय' है ।

स्वाध्याय गान बढाने का सबसे अच्छा सुगम साधन है ।

### सयम

सावधानी सं लेखभाल कर वाय करते हुए जीवा की रक्षा करना तथा अपनी इन्द्रियों को वृत्त म करना सयम है । इसके निये प्रतिनि भोजन पान वस्त्र आभूषण सन देवने गाना सुनने काम सवन करन सवारी करने आदि का नियम करने रहना चाहिये जि में आज इतनी बार भाजन करेगा प्रह्लादय से रहुंगा या एक बार विषय सवन करेगा, इतने पन्थ खाउगा । एक खेल दम्बूगा (या नही) आदि ।

### तप

इच्छाभा का रोकना तप है । इसके निये भोजन कम करना एकाग्रत रमत्याग आदि करते रहना चाहिये । सिनमा आदि के देखने आदि की इच्छाभा को रोकना चाहिये ।



## दान

गृहस्थाश्रम में पत्निग्रह के सत्य तथा आरम्भ काय से जो पाप सव्य हुआ करता है उग पाप भाग को हलका करते रहने के लिये तथा नोच आदि विषयों का कम करने के लिये प्रतिनिधि आहार औषधि अन्न (रसा) आर ज्ञानज्ञान से म यथांगकित धर्म पात्रो मुनि आदि को भक्ति के साथ तथा दीन दुखी जायो को करुणा भाव न आवश्यकतानुसार दान करते रहना चाहिये ।

भूखे को भोजन नग भिक्षारी को दस्य देना अनाथ विधवा दुखी दरिद्री की शक्ति अनुसार सेवा उपकार करना उनका दुख दूर करना ज्ञान का ही रूप है । गृहस्थ का प्रतिनिधि अपने बनाय हुए भोजन म से कुछ भोजन तथा अपनी आमन्त्री म से कुछ न कुछ (कम से कम एक पसा) अवश्य ज्ञान के लिये रखना चाहिये । य छह कर्त्तव्य-काय गृहस्थ को प्रतिनिधि अवश्य करन चाहिये ।

## गृहस्थ का मुख्य धर्म

मसार से मुक्त होने के लिये धर्म तथा शुद्धोपयोग सा तात् कारण है और गृहस्थों का शुभोपयोगरूप धर्म परम्परा कारण है । गृहस्थों की अथ धार्मिक विद्याओं म ज्ञान करना और अहन्त दस की पूजा करना मुख्य बनाया गया है । दान म तथा पूजा म जितना त्याग-अंग है । उसमें कर्मों का मकर तथा निर्भेदा हाती है और जितना शुभराग अंग है उसमें पुण्य अम होना है अत दान और पूजा परम्परा न मुक्ति के कारण हैं । इनमें अनचाहा सात्त्विक भुख मिल जाता है । समयसाग क कर्ण परम आध्यात्मिक आचार्य श्री कुन्कु ने रक्षणसाग ग्रन्थ में लिखा है—

दस्य पूजा शुभ्व साव्यधर्मै य साववा तस्य विद्या ।

आद्यात्मिकस्य मुख्य नदधर्मै ए न विद्या सावि ॥११॥

निशूना मुनिनाथ करेत् वा दह सतिरूपेण ।

मममाहृता मारुतधना मा हाह मोक्षमगदधो ॥१२॥

अथ—दान करना और पूजा करना ये दोनों काय गृहस्थ धर्म में  
[म्य हैं । इन दाना कामों के बिना ध्यावन गृहस्थ नहीं होता । मुनि  
म में ध्यान और स्वाध्याय करना मुख्य है इनके बिना मुनि नहीं हो  
[कता । जो मनुष्य जिनके देव का पूजा करता है और शक्ति अनुसार  
[नियम का पालन देना है वह सम्पत्ति याचक धर्म पानने वाला है तथा  
[नेत्र भाग में लगा हुआ है ।

अतः प्रत्येक भाई का प्रतिनिधि पूजा तथा शक्ति के अनुसार दान  
[वश्यक करना चाहिये ।

### रात्रि-भोजन

मनुष्य स्वभाव से दिवाचर (दिन में भोजन करने वाला) प्राणी है  
[नेत्र में भोजन मनुष्य के निम्ने सब तरह गुणवारी रहता है । मूत्र का  
[काग जिस तरह मनुष्य के नेत्रों का स्थान में सुविधा प्रदान करता है ।  
[मूत्र के प्रवाह में मनुष्य अपने भोजन में आय हुए मृदम जीव जंतुओं,  
[मल आदि की अच्छी तरह देखकर उनका मूल्य में जाने में रोक सकता  
[है । उसी तरह मूत्र का प्रवाह अनेक प्रकार के मूत्रम कीटाणुओं को भी  
[रक्षण नहीं होने देता इस कारण दिन के समय भोजन करने से वे  
[कीटाणु भोजन में नहीं आते पाने जो कि मूत्र अम्ल हो जाने पर उदरान्तर  
[त जाने हैं और बहुत मूत्र होने में नेत्रों से निम्नाई नहीं पड़ते ।

मूत्र अस्त ह्य जान पर वायु मण्डल भा मूत्र विरणा के अभाव में  
[वृद्ध स्वास्थ्यकारक नी रहने पाना वृष भी दिन भर की मखिन  
[पित वायु छोड़ते रहते हैं, ममा कारण दिन की अपक्षा रात्रि में रोग  
[बन हो जाते हैं दिन की अपक्षा रात्रि की मृदु मरुणा रात्रि में  
[विषय हाती है इसलिये स्वास्थ्य की दृष्टि से भी दिन में भोजन करना  
[सामान्यक है ।

सोने से पहले लगभग ४ ५ घण्टे पहले भोजन कर लेना मोटा पचाने के लिये आवश्यक है ऐसा सभी ह्रासकना है जबकि भोजन दिन में कर लिया जाये ।

इसके सिवाय भोजन बनाते समय अनेक जाय जंतु पचनेवाले दान, शाक सार आदि में पड़ जाते हैं उनको हिसा तो होती ही है किन्तु कभी-कभी वे भाज्य पचाने भी विपत्ते हा जाते हैं । जो प्राणियों के भी कारण बन जाते हैं । गत वर्षों में एक बरात के मनुष्य इसी कारण मर गये कि उनके रान में बनाकर परोसे गये शाक में एक साँ गिर कर मर गया था उसका विष तो वह शाक विषना हो गया था । १८२० वर्ष पहले मुसलमानों की एक बरात क १५२० आत्मा श्री रान में बन गई खीर का साकर मर गये थे । देखने पर पीछे मातुप हुआ कि खीर पकते समय छत में से एक काला सप खीर में गिर गया था । इन्दीर में एक बण्णव पुजारी भी एक काल सपे द्वारा विषय विपत्ते दूध को पीकर मर गया था रात्रि के पीने प्रमाण में विपत्ते दूध का गिगडा हुआ रग उस स्पष्ट सिपाई न दे सका । इत्यादि अनेक दुपटनाओं से रात्रि भोजन में बड़ी बड़ा हानियाँ प्रमाणित होती हैं ।

विजली का प्रकाश सूर्य के प्रकाश के समान न तो व्यापक होता है, न उनना स्पष्ट तथा शुभ्र होता है और न रात के दूधित मातावरण को निर्लोप बना सकता है इस कारण विजली के प्रकाश द्वारा भी रात्रि-समय पचा होने वाले सूडम कीटाणु भाज्य पचाने में दूर नहीं किम जा सकते ।

अन दिन में भोजन बनाना और दिन में ही भोजन करना धार्मिक दृष्टि से तथा नारीरिक दृष्टि से एव जासनवात आदि मामानिक दृष्टि से भी सामान्यक है । कम से कम अ न रा भोजन तो रात में प्रत्येक व्यक्ति को कभी न करना चाहिए ।

रात में भोजन करने वाला को नक्तञ्चर या निशाचर ( राक्षस या

(सो हिंसक जानवर) कहते हैं। मनुष्य को निगाहरन बनना चाहिये।

### जल-ध्यानना

मनुष्य को अपने जीवन के लिये वायु के साथ जिस चीज भी सबसे अधिक आवश्यकता है वह है पल। भाजन के बिना केवल जल के बिना मनुष्य कई मास तक जीवित रह सकता है अतः जल बहुत उपयोगी पदार्थ है।

जल में स्वभाव से छोटे त्रस कीटाणु उत्पन्न होते रहते हैं उनमें से कुछ मनुष्य को नुकसान देते हैं कुछ सुदुर्बल से दीक्ष पडते हैं। यदि वे टाणु पीते समय पेट में चले जावें तो एक तो उन की हिगा हानी दूसर उनके कारण कई रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। नहरभा रोग तो प बिना धना हुआ पानी पीने में ही हुआ करता है। इस कारण की सग दोहरे वस्त्र से धना हुआ पीना चाहिये। धने हुए जल को दे ठाठा ही रक्खा जाये ता उसमें २ घण्टी (४८ मिनट) पीछे फिर व उत्पन्न हो जात है इस कारण पानी जब भी पीया जावे ध्यानकर पीना चाहिये। धने हुए जल में यदि तीव्र इलायची घुण करक डाल जावे ता उसमें ६ घण्ट तक जीव उत्पन्न नहीं होते। साधारण गम ये हुए जल में १२ घण्ट तक तथा उबाले हुए जल में २४ घण्ट तक जीव उत्पन्न नहीं होते पाते। इस मर्यादा के अनुसार पीने के लिये जल का उपयोग करना चाहिये।

मुजफ्फरनगर में एक गाँव में एक आत्मी ने गर्मी के दिनों से रात को सोट में रक्खा हुआ जल या ही पी लिया सोटे में बठा हुआ बिस्कुतक मुल में चला गया और तानु से चिपट कर उसका डक मारता रहा तससे यह मर गया।

मुलतान में मूलचन्द कपूर नामक एक युवक नहर में स्नान करते समय पानी पी गया पानी के साथ छोटा-सा मक्क भी उसके पेट में

जाकर अटक गया और वही बढ़ता रहा। वह महक जब मूलबल वादता था तब उसके पेट में बहुत पीडा हाती थी और उसके गुदा में रक्त भी आता था। वद्य डाक्टर मूलबल के रोग का निदान न कर सके। अन्त में एकसरे से उसके पेट में कोई वस्तु हुई। पेट का जब आपरेशन किया गया तब साढे पांच छत्रों का निकलना।

इस तरह की अनेक घटनाएँ बिना छाना हुआ जल पीने आया करती हैं। जल पानी को सदा दोहरे कपडे से छान कर लेना चाहिये। तार की जाला से छाने हुए जल में बाल निकल जाते हैं वस्त्र से छानने पर ऐसा नहीं होता।

जल का छानकर उसकी जिवानी (छाने हुए जल के जीव) स्थान पर (कुएँ बावडी नदी में) पहुँचा देनी चाहिये।

बिना छाने हुए जल की एक बूद में एक डाक्टर ने कीटाणुओं का विश्लेषण कर ६५ हजार जीव गिने हैं। इस महान हिसा से बचने उपाय केवल एक ही है और वह है कपड से छान कर जल पीना।

## हमारा शरीर

प्रत्येक मनुष्य तथा पशु पक्षियों को अपने रहने के लिये श्रम करके मकान गुफा घोंसला आदि स्थान की आवश्यकता होता है। उसी तरह सक्षारी जीव को अपने रहने के लिये शरीर की आवश्यकता है। नाम कम के अनुसार अच्छा या बुरा शरीर सक्षारी जीव को करता है।

शरीर के महार आत्मा देवता सुनता सूँघता छूता स्वाद लेता, बोलना शक्तता फिरता तथा मनक तरह के काम करता है। यदि

र के किसी अंग—आँसू, कान, नास, जीभ, चमड़, हाथ पर, अक्ष, हृदय आदि में कोई सराबी आ जानी है तो जीव के दग्धते, मृत्तन, बोनते छूने काम करने अनन किरन साधने विचारर आदि बाधा (निवृत्त) आ जानी है।

अत्र समुचित स्नान पान से व्यायाम से तथा अन्न मज्जन आदि से शरीर की तथा शरीर के अंग का रक्षा करनी चाहिये। जिससे हमारे किंगी काय में बाधा न आवे। सभी सामाजिक, वैद्यक, व्यापार आदि और सभी पारमार्थिक काय-दणन पूजन सामाजिक, वैद्यक आदि शरीर के संहार होते हैं। इसलिये अपने इस संहार (मुदा साध देने वाले) विवस्त नौकर की ठीक देखभाल रखना सही रक्षा करना आत्मा का कर्तव्य है। अग्नि पर गम रात पर, या गम स्थान पर एक किसी मल मूत्र पर मल मूत्र न करना चाहिये। अपना पैर साफ रखना चाहिये। जोष्ठबद्धता (बन्ध) न होने देना चाहिये।

परन्तु इस शरीर के पालन पोषण सरक्षण में इतना तन्मय भी न हो जाना चाहिये कि इससे अपना हितकारी काम न लिया जाव। इसलिये इस शरीर द्वारा आवश्यक नौकर काय और दणन पूजन स्वाध्याय सामाजिक व्रत, तप सयम आदि पारमार्थिक काय भी अवश्य कर लेने चाहिये।

यानी—मनुष्य को अपने शरीर का स्वामी बनकर उसमें अपना हित सिद्ध करना चाहिये। शरीर और इन्द्रियों का दास नहीं बनना चाहिये। जो लोग धर्म साधन नहीं करते, व्रत तप सयम नहीं करते वे अपने शरीर और इन्द्रियों के दास (नौकर) होते हैं अपने आत्मा के लिये शरीर को वे दुखदायी बनाते हैं उनके लिये यह शरीर बाधन बन जाता है उन शरीर से धर्म लाभ नहीं होता।

## अमक्षय

जो पदार्थ खाने योग्य नहीं होते उनका 'अमक्षय' कहते हैं। ममन्तभद्र आचार्य ने रत्नकरण्ड धावकाचार्य के रत्नोक्तों में अमक्षय पदार्थों को ५ विभागों में विभक्त किया है—  
 १—असविघातक २—बहुस्थायीघातक, ३—मादक और ५—अनुपसेव्य ।

जिन पदार्थों के खाने से हृत्त्रिदय त्रिद्वय चार चिह्न पचेन्द्रिय यानी—शरीर जीवों का घात (हिसा) होता है उन पदार्थों को खाना असविघातक है। अस जीव के शरीर में रक्त (रक्त) के अवन उनका शरीर मर्ममयी होता है। तदनुसार मीठ, मधु, अडा, बड़ का फल, पीपल का फल, गुलर अजार पीपू (पाक अतमुद्गत (पीठ घण्टे) में पीछे का मक्खन दहीबड़ा आदि पदार्थों अस जीव उत्पन्न हो जाते हैं इस कारण ये पदार्थ अमक्षय होते हैं।

जिन पदार्थों के खाने से अनात स्थावर जीवों का घात होता उन पदार्थों का खाना बहुस्थायी घातक है। जिन वनस्पतियों को का प्रकाश (किरण) नहीं छू पाता ऐसे पृथ्वी के भीतर उत्पन्न वाले पदार्थों के (पृथ्वी में इधर उधर फलकर बढ़ने वाले) अरबी अरक सकरक आदि तथा मूत्र (जड़ की तरह पृथ्वी भीतर नीचे का आर बढ़ने वाली वनस्पति)—गाजर प्याज सहसुन, मूली की जड़ आदि एक एक बीज में अनात स्थावर जीव होते हैं अतः वे अमक्षय हैं।

जिन पदार्थों के खाने पीने से बुद्धि भ्रष्ट होती है नशा होता है वे पदार्थ मादक होते हैं। जस—शराब अफीम भाग चरम, गांजा महुआ तम्बाकू बीड़ी सिगरेट आदि पदार्थ इसी श्रेणी में हैं।

जो पदार्थ अपने शरीर को रोग उत्पन्न करने वाले हैं उनको

अभिष्ट रहते हैं। जैसे—हृजा के रोगी को जन, दस्त अतीसार सद्य-हृषी के रोगी को दूध प्रतिष्याय (नजला) के रोगी को दही, लाम्बी के रोगी को वर्षी निबल पाचन शक्ति वाला को मादा (सोआ) हलवा वादाम आदि गरिष्ठ पन्थाय।

जो पन्थाय अच्छे पुरुषों के सवन करने योग्य न हों वे अनुपसेयक हैं। जैसे—गाय का मूत्र आदि।

शोला घोरवन्ता निमिभोजन बहुवीजा वैगल, मधान।

बद्ध पीपर ऊमर, कण्डूमर पाकर पल्ल जो होय अज्ञान ॥

कन्दमूल मागी त्रिष आमिष मनु माखन अरु मदिरापान।

पल्ल अतिदुग्ध तुषार चलितरम ये जिनमत वाईम यज्ञान ॥

ये २२ अभक्ष्यों में आ जाते हैं। अभक्ष्य पन्थाय भी इन ५ प्रकार के अभक्ष्या में आ जाते हैं। धार्मिक व्यक्ति को अपने शरीर की रक्षा के लिये तथा अय जीवा की रक्षा के लिये अभक्ष्य पदाथ नहीं खाने चाहिये।

## भोजन

मनुष्य को अपना शरीर स्वस्थ नीरोग रखने के लिये शुद्ध सात्विक भोजन करना चाहिये। अन्न पन मेवा दूध दही धो मानवीय शरीर के लिये अच्छे पौष्टिक पदाथ हैं। इनको अपनी पाचन शक्ति के अनुसार खाना चाहिये। भोजन शुद्ध बना हुआ हो शुद्ध छना हुआ जल हा। तो वह शरीर का हिनकारी है। होटन के भोजन में शुद्धता नहीं होती।

भोजन नियत समय पर नियत मात्रा में करना चाहिये जिससे वह ठीक पचकर शरीर का पुष्ट करे। भूख से कम खाना सदा लाभदायक है। भूख से अधिक खाने वाले व्यक्तिषा की मृत्यु-संख्या सत्तार में अधिक है। भूख से कम खाने वाले स्त्री पुरुष प्राय रोगी नहीं होते।



जहाँ तक हो सके स्वास्थ्य के लिये मास में एक उपवास कर लेना बहुत लाभदायक है।

मांस मनुष्य के लिये प्राकृतिक भोजन नहीं है। जिन जीवा के दान्त नोकीले होते हैं जीभ में चपचप कर पानी पीते हैं, एम सिंह, भेड़िया बिल्ली कुत्ता आदि जानवरों का भोजन मांस ही सजता है। मनुष्य के दाँत गान नोकीले नहीं होते न वह जीभ से चपचप कर पानी पीता है इसलिए मांस उसके लिये प्राकृतिक (कृत्रिमी) भोजन नहीं है। घी, घना गेहूँ दाना आदि में जितना पोषण रहता होता है, मांस में उतने बहुत पादा हाता है। अतः मांस किसी भी तरह भोज्य नहीं है।

### अडा

अडा रित्रया और पशुआ के गभ के बच्चे बच्चे के समान होता है। उसके पक जाने पर मुर्गी बबूनर आदि जाव उत्पन्न होने हैं। अतः अडा खाना मांस खाने के समान है। इस कारण अडा कभी नहा खाना चाहिये।

### चना

चना अच्छा पौष्टिक पदार्थ है। गरीब स्त्री पुरुष भी मूख चना का भिगोकर ४५ घंटे पाछे चबाकर खाव तो यह सस्ता मरन भोजन मूल्यवान पौष्टिक पदार्थों के समान शरीर का पोषण करता है।

मिठाइया पर मक्खियाँ अडा करती हैं वे अनेक तिन की बानी भी हो जाती है तथा वे गरिष्ठ (वचन में भारी) होती है इसलिये वे शरीर के लिये हानिकारक होती हैं। अतः जहाँ तक हा सक मिठाइयाँ कम खानी चाहिये।

गाय का धारोण ताजा दूध पाना शरीर के लिये बहुत लाभदायक है।

चाय में कोई पावक तत्व नहीं जाना यह प्रकृति में उष्ण होती है अतः चाय पीने को व्यसन नहीं बनाना चाहिये। उमका न पीना अच्छा है यदि न निभ सक तो थोड़ा पाना चाहिये।

### बीड़ी सिगरेट

तम्बाकू पीने से पकड़े सराब हा जाता है इसके धुएँ में तमा हा जाता है। नामूर (कँसर) भी तम्बाकू (बीड़ी सिगरेट) पीने से होता है। इस कारण बीड़ी सिगरेट का त्याग कर देना लाभदायक है।

### भोज्य पदार्थों की मर्यादा

आटा बेसन आदि धूत की मर्यादा बरसात में ३ दिन की गर्मी में ५ दिन की और शीत ऋतु में ७ दिन की होता है। हर एक ऋतु सामान्यतः अप्राहिका से बढ़ती जाती है। छत्ते हुए पानी की मर्यादा १ मूहृत अर्थात् २ घड़ी की है। जवगादि तिकन द्रव्या द्वारा रोग रस गंध वरुण बन्ते हुए जन की मर्यादा दो पहर की। अधन सरसीका उष्णजन न होकर साधारण गम जन की मर्यादा ४ पहर की। अधन सरासे गम हुए जल की मर्यादा ८ पहर की है। दूध-दुधकर दालकर का घड़ी के पहले पहले गर्म कर लेने से उसकी मर्यादा आठ पहर की है। (कोई-कोई कहते हैं कि दूध ४ पहर में ही बिगड जाता है अतएव बिगड जाये ता मर्यादा के भीतर भी न पीये) यदि दूध गम नहा करे ता दो घड़ा के पीये उसमे जिम पशु का वह दूध हा उसा जाति क सम्मूह्यन असम्ब्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं। गम दूध में जायन देने पर वही की मर्यादा ८ पहर तक है। विलोत ममय यदि छाद्य में पानी डाला जाए ता उसकी मर्यादा उसी दिन भर की है। यदि विलोय पीछे मिलाया जाए ता उस छाद्य की मर्यादा केवन एक मुहूर्त की है (कि को) चूरे की मर्यादा शीत में एक मास, गर्मी में १५ दिन और बरसात में ७ दिन की है। घी, गुड तैल आदि की मर्यादा स्वात् न बिगडन

नक है। खिचड़ा बड़ी तरकारी की मर्यादा तो पहर की है। पूरा गीरा रोगी आदि जिनमें पानी का अधिक अंग रहता है उनकी मर्यादा पहर का है। पूरा पाश्चिमा खाजा लड्डू घबर आदि जिनमें पचने में अधिक अंग रहता है उनकी मर्यादा ८ पहर की है। जिस भोजन में पानी न पचता तो उसमें मर्यादा उसकी मर्यादा आटे का बराबर है। जिसमें हल मसाले हल्के धनिया आदि की मर्यादा आटे का बराबर है। सुमिथी मारक दात आदि मिष्ट द्रव्य से मिले हुए दही की मर्यादा दोपहर की है। गुड़ के साथ दही मिलाकर खाना अभिप्रेत है।

## स्तुति

माय पूज्य व्यक्ति की प्रशंसा में बड़ा बड़ा कर वचन का 'स्तुति' है। जमनास नीकर अपने स्वामी की अनन्तता प्राणरक्षण जीवन आधार आदि बातें कहकर उसकी प्रशंसा करता है।

अहं भगवान् सबसे अधिक पूज्य हैं अतः उनकी प्रशंसा भक्ति के साथ जो विनय भरे गान् मुख से निकलते हैं उसे भगवान् की स्तुति कहते हैं।

जैसे अहं परमात्मा में अनन्त (सीमा रहित बेहद) गुण हैं उन गुणों का वचन जीभ का द्वारा नहीं हो सकता उनको बड़ा बड़ा कर कहने की शक्ति तो हर रोज़ उन सबका साधारण कथन भी असम्भव है अतः वास्तव में तो अहं भगवान् की स्तुति की नहीं जा सकती किन्तु फिर भी भक्तिवत् भगवान् के गुणमान में जो भी शक्ति मुख से निकलती है उसे स्तुति स्तवन स्तोत्र विनती कहते हैं।

स्तुति में वचन-योग पवित्र वायु में लगा रहता है मानसिक भाव भगवान् की ओर आकर्षित होते हैं तथा हाथ जोड़कर नमस्कार करने

आणि भक्ति की प्रिया म शरीर की श्रुता होती है। इस तरह मन-वचन-वाय (तीनों योग) शुभ कार्य म लगे रहत है।

## भक्त और भगवान

भक्ति करत समय भक्त अपने आपका भगवान का एक विनीत विश्वासी सेवक समझता है अत वह अपने दुःख सफट मेट कर अपने अपने उद्धार की भावना प्रार्थना और याचना भगवान मे करता है। उस समय वह गगाऽह यानी—मैं तरा नाम हूँ इस अवस्था मे होता है।

इस क आग जब उसकी दृष्टि भगवान का गुणगान करते हुए अपनी आत्मा की ओर जाती है उस समय वह थोडे से अंतर के साथ अपने आपको भगवान सरीखा समझन लगता है कि जो अनन्त ज्ञान दशन मुख धीय आनि गुण भगवान म है व ही गुण मेरी आत्मा में भी हैं अन्तर केवल इतना है कि मेरे गुण कम-गल से छिपे हुए हैं विकसित नहीं है और भगवान की आत्मामें उसका पूण विकास हो गया है इसी कारण मैं एक साधारण समारी आत्मा बना हुआ हूँ और भगवान परम-आत्मा हो गये हैं।

ऐसा चिंतन करते हुए वह अपने लिये सोऽह की भावना करना है जिसका अभिप्राय उपयुक्त है। यानी—म (वह परमात्मा) अहम (मैं हूँ)।

साह की भावना लेकर जब वह ससार शरीर तथा विषय भोगों से रागभाव त्याग कर विरक्त हो जाता है। एकान्त निर्जन प्रान्त मे ससार क समस्त सकल विकल्प छोडकर आत्म माधना मे लग जाता है अनेक कष्ट उपद्रवा के आने पर भी अपने ध्येय से विचलित नहीं

हाला शरीर की ममता जिसक विलीन हो जाता है आत्म ध्यान में देखा सीन होता है कि उसके मिथ्या उसकी चित्तवृत्ति अमय कहीं भी नहा जाने पाता उस समय उसके नयोन कमबखन नगण्य (न कुछ) सा हो जाता है और पूरे सचित मनुष्य कम विनष्ट होन लगत हैं, जिसमे कि सूक्ष्म राग द्वेष आदि विकार भी हर भर नही होने पाते, बल्कि सूखे पत्त की तरह स्वयं भङ्ग जाते है ।

तब उसकी भावना हाती है केवल अहम् (मे परम गुणपूर्ण शुद्ध परमात्मा हूँ) उसकी यह भावना कौरी भावना नहा रहता पूण शुद्ध हाकर वह यथाय में (सचमुच) 'परमात्मा बन जाता है ।

इस तरह भगवान् का सच्चा भक्त दाऽमीऽह' स साऽह बनता है और सोऽह से अहम् होकर भगवान् की भक्ति के सहारे अन्त में स्वयं भगवान् बन जाता है ।

भगवान् भी वही मच्छा है जो अपने भक्त को अपने समान भगवान् बना दे और भक्त भी वही मच्छा है जो भगवान् की भक्ति के सहारे अन्त में स्वयं भगवान् बन जावे ।

इसी कारण स्तुतियों में जिने द्व भगवान् को दुःख दूर करने वाला सुख सम्पत्ति, स्वयं, मोक्ष देने वाला बतलाया है । और अपने सुख कल्याण के लिये उनसे तरह-तरह की माँगें की हैं ।

दूसरी बात यह है कि भक्ति करते समय भक्त पुरुष भगवान् के बहुत निकट अपनी गाँड़ी रागमयी भावना से पहुँच कर अपने आपको भुला-सा देता है उस समय वह कभी अपने आपको भगवान् का विश्वासी चाकर समझ लेता है कभी अपने भीतर पुत्र की ओर भगवान् में पिता की भावना कर बैठता है कभी वह भगवान् को अपना हितकारी मित्र मान बैठता है और उस पुत्र से उसका यथाय विद्वान्त की बात ध्यान में नही रहती । वह तो भगवान् को विद्यालय (पाठ) से

नही समझता बल्कि बिल्कुल अज्ञान मानकर बड़ा दुःख मचाने लगा है। इन लिये अपना हृदय खींचकर उनका दर्शन करने करता है। उड़ी बाद चीठ में अपना सारा रोना घोना सारा दुःख सब उद्यम मन्दास का गुना देता है क्योंकि उस समय उसका अज्ञान मानने मन्दास का भिषाक आय कोई चीज दिखाई नही देता।

महाकवि धनञ्जय भगवान का पुत्रन कर रहे थे उस समय उस पुत्र की माँ ने काट पाया, साँप का विष सब मना करके मृत हो गया। यह देख कर सनकी पना बदला गई। इस प्रकार धन पंडित धनञ्जय को इस बात की खबर मिली और वह तब तक पहुँच जाने को वहा। नौकर ने पूरा करत हुए धनञ्जय के ईश्वर का दिया। धनञ्जय अपनी पूजा में लीन थे उन्होंने इस दुःख का ध्यान नहीं दिया उनका उस समय सबसे अधिक दुःख माना है जो पुत्र हुआ था।

धनञ्जय जब घर न पहुँचे तब दूसरी रात दुर्घटना के दिन सबर भेजी और तुरन्त आने की प्रापण्य की लालु लालु का सबर को भी इन्होंने अनसुना कर लिया भगवान की पूजा में इतना ध्यान न हट सका और वे घर पर न पहुँचे।

तब उस पुत्र गौरु में उनकी स्त्री का दुःख जान कर और भुमलाकर उस अचेत पुत्र का दर्शन करने लगी। मर्त्य ब साकर उमने पूजा करते हुए धनञ्जय के देण्डे देव राम लिंग और क्रोध के उबाल में धी धार सता कर उसे डर मुना करती उस बेचारी को क्या पता था कि उसका अज्ञान मानने मन्दास का भिषाक हुआ है अपनी तीव्र भावना के कारण मन्दास का भिषाक लाल दूर पर सडा है।

भक्ति में लाने हो गया। उनकी स्त्रा तथा मन्दिर में आये हुए अथ स्त्री पुरुष धनञ्जय की ऐसी भक्ति में लीनता देखाकर चकित (हैरान) रह गये।

कवि धनञ्जय ने उमी समय विद्यापहार स्तान बनाया और स्तवन करने हुए भगवान् गे बहने लगे—

विद्यापहार मखिमौषधानि,  
मन्त्र समुदिरय रसायन थ ।  
आम्पत्यहो न त्वभिति स्मरति  
पर्यायनामानि तर्कव तानि ॥१४॥

यानी—परीर का विष उतारने के लिये जनना मणि औषधि मत्र तत्र को कुल में दौलती भागती फिरती है उसको यह नहीं मानूँ कि य सब आप के ही दूगरे नाम हैं। यानी—विष उतारने वाले तो सभी कुछ आप हैं।

उनका पवित्र भावना का यह प्रभाव हुआ कि उनका पुत्र इस तरह उठकर खड़ा हो गया जब गन्धी नीम जागा हो धनञ्जय फिर भी भगवान् की स्तुति में लीन रह और उड़ोने स्तुति के १६ पद्य और भी पढ़कर अपनी भक्ति भावना को समाप्त किया।

ऐसी ही बात श्री मानतुग आचार्य के साथ हुई, वे बदीघर (जेल) में पड़े हुए थे। अथ उपाय न दगकर उहाने वही पर प्रभावदात्री भक्त्यामर स्तान की रचना कर डाली। स्तान के ४६ वें पद्य में य बोलें—

आपादकस्यदमुच्छ्रित्तल—वेष्टितागा  
माद वृत्तिनगकोटिनिपृष्टजवा ।  
त्वनामप्रमर्शि मनुना स्मरन्त  
सद्य रय निगतवध भया भवन्ति ॥

मानी—कई मनुष्य पर सन्तान लक्ष करीब के लक्षका दण्ड  
 म डाल दिया गया है। मानी मोक्ष का केवल ही एक देवता है  
 खिन गई हों। किन्तु मनि वह आदित्य जिन नाम का रूप के  
 ण करे तो उसके सब अपन स्वयं ही जाय है।

इस इतिहास के पढ़ते ही वे बाहर बिना पढ़ने के गाने बोलें हैं।  
 ल डरा बड़ीपर (जिन) म बाहर डिकन आर।

वाचिराज मुनि को छोड़ राग हो गया था राजसभा में ब्राह्मण  
 एवं जन सभासत् (दरबारा) की हर्षिता उड़ाते हुए राजा ह मर्षित  
 कहा कि इसने गुरु पाड़ी हैं।

आचार्य वाचिराज के भजन को बहुत बुग मना और आचरण के  
 विषय (जाग) में वह बटा कि नहीं मरदुह का दर्शन तो मरदुह  
 मान निमत है। राजा ने कहा कि अष्टम रूप होत राजा दण्ड  
 रोगे सब मानूम हा जायगा कि तुम गानों में ही विष्णु दण्ड मय है।

वह जन सभासत् राजसभा से निकल कर मया मर्षित पृथिवी  
 म पड़वा और राजसभा की सब बात कह सुनी। मर्षित बरते  
 म्भीरता से बाने जाओ पर आराम करो मर्षित म्भीरता सब  
 गीक हो जायगा। वह भजन विष्णु पर बनाए।

रात्रि समय श्री वाचिराज आचार्य ने मर्षित मर्षित की  
 मर्षित म्भीरता होकर बनाया। सोच पढे मर्षित है—

प्राणवत् त्रिदिग्गवनाद्वयत्त मर्षित  
 गुरुवीचक कनकमयगा हा मर्षित मर्षित ।  
 ध्यानद्वार मम मर्षित मर्षित मर्षित  
 तकि चित्र तिन मर्षित मर्षित ॥

अर्थात्—हू जितेद्र भगवान् । मर्षित मर्षित मर्षित ।  
 चणार म आने से पहने ही आचार्य मर्षित मर्षित मर्षित



(रत्न वर्षा से) हो गया था, तो ध्यान के द्वारा यदि मैं आपकी बातें हृदय में बिटानू तो क्या यह मेरा शरीर मुनहरा नहीं हो जायगा ?

इस श्लोक के पढ़ने ही क्षत्रिराज का कोढ़ दूर हो गया। प्रायः माकर राजा ने जब ब्राह्मण मन्त्री और उस जन सभासभ के साथ ही क्षत्रिराज आचार्य के ज्ञान विषय तो जन सभासभ की बातें सब पाईं। इस पर उस ब्राह्मण मन्त्री को राजा ने बहुत फटकारा।

इस तरह भक्ति करते समय वीतरागता के सिद्धान्त को भक्ति के आवेश में गौण (पीछे) कर दिया जाता है। प्रायः सभा स्तुतियाँ उसी भक्ति भावना से बनी हुई हैं। अतः जिनेन्द्र भगवान् को वीतराग (कर्ता हर्ता न) मानते हुये भी उन स्तोत्रों में—

त्रौपत्तिं को चार शदायाः सीता प्रति कमल रचायो ।

अपन से किये चकामी, दुख मेरो अतस्यामी ॥

इत्यादि प्रकार के नाम स्तुतिकारों ने रखे हैं। सबसे प्रथम स्तुतिकार (१८०० वर्ष पहले के स्तुति बनाने की नींव डालने वाले) मुख्य परी ॥ प्रधानी भारत में अपने समय के सर्वोत्कृष्ट तार्किक विद्वान् श्री समस्तभद्र आचार्य ने अपने स्वयम्भूस्तोत्र में भी भक्ति की इसी शक्ति को अपनाया है।

गाराश यह है कि भक्ति के समय भगवान् में अनुराग प्रधान होता है, निराशा प्रधान नहीं होता। अनुराग के बिना भक्तिभाव पूजन स्तवन विनय नहीं बन पाती।

### भक्ति और सिद्धांत

मुनि आत्मध्यान द्वारा राग द्वेष मोह ममता घृणा क्रोध काम मत्त अज्ञान आदि विकार भावों में अपने आत्मा को पूर्ण गुद करके जिनेन्द्र भगवान् होते हैं इस कारण उनको न किसी से प्रेम हाता है न किसी से द्वेष भाव न किसी से व प्रसन्न होते हैं और न किसी से



करने (जमीन पर डाल देने आदि) से बहू स्पर्शनीय होता  
 वही मूर्ति किसी स्थान पर ठीक रीति से स्थापित कर ली जाती है  
 राज पुतिस सेना उसका निर भुवाकर प्रणाम करती है प्रत्येक बलि  
 चारी उसका सम्मान करता है और यदि कोई व्यक्ति उसका अपमान  
 करे तो उसको दण्ड दिया जाता है ।

यही बात भगवान् की प्रतिमा के विषय में है गिल्फकार इ  
 बनाई गई मूर्ति तब तक पूज्य नहीं होती जब तक कि उसकी वि  
 अनुसार सूर्य आदि मन्त्रों द्वारा प्रतिष्ठा न हो जाय । प्रतिष्ठा होने  
 पश्चात् उस प्रतिमा में पूज्यता नहीं आती । अतः अप्रतिष्ठित मूर्ति  
 नमस्कार पूजन आदि न करना चाहिए ।

### चित्र

जिस तरह अप्रतिष्ठित प्रतिमा अपूज्य होती है उसी तरह का  
 बन्ध, टीन लकड़ी तथा दीवाल पर बनाया गया भगवान् का चित्र  
 पूज्य नहीं होता शिविये ऐसी किसी चित्र को न तो हाथ जोड़ने  
 चाहिये न निर भुवाकर नमस्कार करना चाहिए न अभियेक पूजा  
 करे और न अघ चढ़ाना चाहिये ।

### खडित प्रतिमा

प्रतिमा का यदि कोई ऐसा अघ भग होजावे जिससे उसकी वात  
 राग गुण में अन्तर न पड़े—जैसे कि उगली का कुच्छ अथ खण्डित हो  
 जावे चरण का लज टूट जावे (हत्यादि) तो वह प्रतिमा अपूज्य नहीं  
 होती । किन्तु यदि प्रतिमा की शीला (पत्थर) नास आदि ऐसे  
 अघापाग भग हो जावे जिनसे उनकी बीनराग मृदा में अन्तर न  
 जावे तो वह प्रतिमा पूजनीय नहीं रहती । ऐसी प्रतिमा का अघाध तल वाले  
 नहीं समुद्र क्षिति न त्रि त्वा कर देना चाहिये ।

## मूर्तिपूजा का सारम्भ

वीतराग भगवान् की मुक्ति हो जाने पर उनका साक्षात् दान होगा अस्मभव है अतः उनके दशम वी भावना सकल करने के लिये भगवान् की वीतराग प्रतिमा बनाकर उसके दान पूजन करने अपना चित्त पवित्र करने की प्रथा अनादि समय से है ।

इस युग की दृष्टि से सबसे पहले आज से करोड़ों वर्ष पहलू भगवान् ऋषभनाथ क बड़े पुत्र आद्य चक्रवर्ती सम्राट भरत ने त्रिनक नाम से इस देश का नाम भारत रत्ना गया—बलाग पवन पर भगवान् ऋषभनाथ के मुक्त हो जाने के बाद मन्त्रिों का निर्माण कराया था और उनमें भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल के २४ २४ तीर्थकरा की प्रतिमाएँ विराजमान की थी । भगवान् ऋषभनाथ के अरहण हो जाने क पचात् उनकी जीवन मुक्त अवस्था में भी धर्माराधन के लिये भरत ने मूर्तिनिर्माण कराया था ।

मोहनजोदधरा (सिन्ध) की पृथ्वी खोदने समय जो साढ़ पाँच हजार वर्ष पुराना नगर निकला है उसमें प्लेट न० २ की ३ ४ ५ न० की सीमों पर नग्न बड़े आकर मयन के चिह्न-सहित भगवान् ऋषभनाथ की मूर्ति अंकित है ।

सग्नगिरि उज्जयिनिरि (उड़ीसा) में हाथी गुफा पर जो महाराजा सारखेल का पितापेक्ष है उनमें भी मगध के राजा से आदि त्रिन (भगवान् ऋषभनाथ) की मूर्ति (मगध जीत कर राजा सारखेल द्वारा) वापिस लाने का उल्लेख है । मूर्ति को मगध का पूर्वज राजा तीन सौ वर्ष पहलू महाराजा सारखेल क पूर्वजों से छीन कर ल गया था । इस तरह वह मूर्ति ढाई हजार वर्ष से भी पुरानी थी ।

तेरपुर (धारासिख उस्मानाबाद) की गुफाओं में राजा करिकुण्ड की बनवाई हुई भगवान् पाशवनाथ की मूर्तियाँ भगवान् महावीर से पहिले

की मूर्ति है यह राजा भगवान पादबनाथ के लीपकान में हुआ है। इस तरह से भगवान अरहत की शीतराग प्रतिमा बनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। जहाँ भी भारत में खुदाई होती है प्रायः वहाँ प्राधान्य रूप अरहत भगवान की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।

गघाट में १२ गुप्त के राजकाल में श्री १२ वय की अवधि पड़ा था उस समय उत्तर प्रान्त में रहे भाय कुल जन माधु कपडे पहनने लगे। अथवा समाप्त हुआ जान पर भी उनमें से जब बहुता ने कपडा पहना। छाया तथा विषम सम्यन् १३६ में श्वेताम्बर मय स्थापित हुआ।

श्वेताम्बर भाई भी विषम ल० की ६ वीं सन्मन्दा तक शीतराग मय मूर्ति ही बनाने पर पूजा करते रहे। उस समय एक प्रतिमा पर अग्नि काट करने के लिये श्वेताम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय का परस्पर विवाद हो गया तब से श्वेताम्बर भाइयों ने अपनी श्वेताम्बरीय प्रतिमाओं की अलग पहचान रखने के लिये शीतराग प्रतिमा पर लगाट का चिह्न बनाना प्रारम्भ कर लिया। बहुत दिनों तक वे ऐसा ही करते रहे। उसके बाद वे मुकुट हार, धोती आदि भी शीतराग मूर्तियाँ में बनवाने लगे। उदयपुर के मूर्ति-सङ्ग्रहालय में ऐसी श्वेताम्बर मूर्तियाँ हैं।

### पूज्य

जगत् में आध्यात्मिक सुख शान्ति प्राप्त करने के लिये पूजा आराधना करने योग्य तीन पन्था हैं—१ देव २ गुरु ३ दास ।

अर्हन्त सिद्ध भगवान परमगुरु परमात्मा है, समस्त देव इन्द्र, मनुष्य उनको पूज्य मान कर उनकी शिष्ट परम पूज्य श्रेयाधिपति हैं।

अहन्त सिद्ध भगवान की दिष्ट प्रथम पूज्य तस्यार

यागी आत्म गुडि म तत्पर आवाप उपाध्याय और माधु तथा ऐपक  
गुलमक पूय गु है ।

जा सबसे उच्च त म विराजमान हैं उन्हें परमेष्ठी कहते हैं ।  
परमेष्ठी ५ हैं—१ अहंत २ सिद्ध ३ आवाप ४ उपाध्याय ५ सर्व  
माधु ।

पानावरण दगनावरण मोहनीय और अतस्य इन चार शक्ति  
ज्यों का क्षम बन्के जिनका केवलज्ञान (अनन्त ज्ञान) अनन्त दर्शन,  
अनन्त सुख और अनन्त बल प्राप्त हो जाता है जन्म मरा, (बुझापा),  
मृत्यु, तृषा (प्यास) क्षुधा (भूख), आश्चर्य (अधम्मा), पीड़ा रो  
(धकावट) राग शोक अहंकार मोह मय (निम्न) बिला, स्वेद  
(पसीना) राग और द्वेष इनसे मुक्त हो जान हैं उन शुद्ध, बुद्ध  
मच्चिगानन् कीतराग भगवान को 'अनन्त भगवान कहते हैं ।

आत्मगुडि की अवेसा वरुपि मिट परमेष्ठी का प उँका है किन्तु  
जगत् कल्याण अहंत परमेष्ठी द्वारा ही विशेष होता है । क्योंकि उनके  
निय्य उपने से समार से धम का प्रचार होता है । इन महान् उपचार  
के कारण अहंत परमेष्ठी का नाम सिद्ध परमेष्ठी से प्रथम स्थान पर  
रिया जाता है ।

अहंत हा जाने पर किसी किसी अहन्त का उपने मरी जाना है,  
व मोन रहते हैं अत उनको 'मूक केयली' कहते हैं । जिन अहन्तों का  
निय्य उपने हुआ करता है उन सब म प्रथम तीर्थकर हाते हैं । व धर्म  
पाथ का उदार करते हैं धम का जगत् म महान् प्रचार करते हैं ।

### तीर्थकर

जनों की १४८ प्रवृत्तियां में तीर्थकर प्रवृत्ति सबसे अधिक दुर्लभ  
है । जो व्यक्ति धमस्त समार के उदार की भावना म कठोर निर्मल  
उपस्था करता हुआ निम्नलिखित १६ भावनाओं को रिया केवलपानी

या धुनवाना के निकट जाता है उस व्यक्ति के तीर्थकर प्रवृत्ति का बंध होता है। करोडा मनुष्या मे स किसी विरले मनुष्य को य सोभाग्य प्राप्त होता है।

## १६ भावनाएँ

- १ दान शिशुहि—निर्गोप सम्यग्दर्शन (आत्म श्रद्धा) होना।
- २ विनय सम्पन्नता—पूज्य व्यक्तियों तथा रत्नत्रय के लिये विनय भाव (आदर भाव)।
- ३ अततिचारशील धन—अना तथा उनके रत्नक पीलो का निर्गोप आचरण।
- ४ श्रमीश्वर मानोपयोग—सदा ज्ञान का अभ्यास करना।
- ५ संवेग—समार से भय धम तथा धम के फल मे अनुराग।
- ६ शक्तितत्पथान—क्षपित अनुमार दान करना।
- ७ शक्तिस्तप—शक्ति के अनुमार तप करना।
- ८ साधु समाधि—समाधि सहित मरण तथा साधुओं का उपसंग दूर करना।
- ९ वैयावृत्य करण—रोगी बान वृद्ध मुनि की सेवा करना।
- १० अर्हंत भक्ति—अहन्त भगवान की भक्ति करना।
- ११ आचार्य भक्ति—मुनि सघ के नामक आचार्य की भक्ति करना।
- १२ बटुधुन भक्ति—उपाध्याय की भक्ति करना।
- १३ प्रबचन भक्ति—गुरु का भक्ति करना।
- १४ आश्रयजापनिहासि—यद् आवश्यक क्रियाया का निर्दोष आचरण।
- १५ मार्ग प्रभावता—उपदेन गका समाधान तापस्या आदि स धर्म का प्रभाव करना।

। १६ प्रवचनवामरुद—साधनी जन से गाड़ा प्रम ।

इन १६ भावनाओं में से दान विगुद्धि भावना का होना अति आवश्यक है उसके साथ गण १५ भावनाओं में से १ २ ३ ४ आदि जिनकी भी हा या सभी हों तो तावकर प्रकृति का बाध हो जाता है ।

### तीवकर प्रकृति का प्रभाव

तावकर प्रकृति का प्रभाव में तीवकर होने बाध मान व्यक्ति का माता के गर्भ में अति समय माता को गुभ १६ स्वप्न आते हैं गर्भ में आने से ६ मास पहले दविद्या माता की सेवा करने लगती हैं । तीवकर के गर्भ में आने के बाद जन्म समय मुनिगी का लत समय कवन पान हो जाने पर तथा योग हो जाने पर देव महान उत्सव करते हैं उस समय में सम्मिलित होन वालो तथा उत्सव का दान वानों के हृदय में धर्म के फल का प्रभाव अति होता है जिसमें कि उनमें से अनका को सम्मिलित हो जाता है अनको को गुभ कम-बाध आदि आत्मक-प्राण प्राप्त होना है । इस कारण तीवकर का गर्भ जन्म तपस्या कवन पान उदय और निर्वाण पर होने वाले देवउत्सवों को कल्याणक कृत है ।

परल एरावन क्षेत्र में तीवकरों के पाचो कल्याणक होन है किन्तु विदेह क्षेत्र में केवली, श्रुतकेवली की परम्परा मना चालू रहती है अत वही जो मनुष्य पूर्वभव से तीवकर प्रकृति का बाध कर लता है उसका पांच कल्याणक होने हैं । किन्तु कोई व्यक्ति गृहस्थ जन्म में तीवकर प्रकृति का बाध करता है तो उसका तपस्यहण कवनपान उदय और मुक्ति गमन समय के तीन ही कल्याणक होने है तथा जो पुरुष मुनि अवस्था में तीवकर प्रकृति का बाध करके उपां भव में उगक उदय में तीवकर बनता है उसके पान और निर्वाण में दो कल्याणक ही होते यानी—विदेह क्षेत्र में तीन तथा दो कल्याणक वाले भी तीवकर



## तीर्थकर प्रकृति का उदय

यद्यपि तीर्थकर प्रकृति के प्रभाव से गभ मे जाने से भी ६ म पहल से तीर्थकर के माता पिता के घर उस नगर मे रत्नवर्षा के उत्सव होने लगते हैं जन्म होने पर तथा मुनि षोडा के ग्रहण करते समय भी महान उत्सव होते हैं किन्तु उस समय तीर्थकर प्रकृति का उदय नहीं होता है तीर्थकर प्रकृति का उदय अह १ अवस्था मे—केवल ज्ञान हो जाने पर होता है। तीर्थकर प्रकृति के उदय मे तीर्थकर का इच्छा न होते हुए भी स्वयं उनके सर्वांग मुख से समस्त जीवा का कल्याण करने वाला सत्य माग प्रकट करने वाला, यथार्थ मिद्वान्त के प्रकाशक दिव्य उपदेश होता है जिसे दिव्यध्वनि कहते हैं।

### समवशरण

तीर्थकर के उम दिव्य उपदेश से लाभ लन के लिये 'समवशरण' नामक महान सुन्दर विद्यालय सभा मण्डप देवा द्वारा बनाया जाता। उसके बीच मे तीर्थकर का ऊचा आसन होता है। उसके चारो ओर १२ कक्ष (विद्यालय कमरे) बने होते है उन कक्षो मे देव देवियाँ पुत्र स्त्रियाँ साधु साध्वियाँ पशु-पक्षी मुविधा के साथ बठ कर तीर्थकर उपदेश सुनत है। तीर्थकर की वाणी को देव सर्व भाषामय कर देते अत वहाँ पर बठे हुए सभी प्राणी उसे अपनी अपनी भाषा मे समझते हैं। यहाँ सबका समान रूप से धारण मिलती है किसी प्रकार छोटे बड़े रक्त राजा का भ्रम भाव नहीं होता इसलिये वह विद्यालय सभा मण्डप समवशरण कहनाता है।

### साधारण केवली

तीर्थकर के सिवाय अन्य कवल नानिया के लिये भवत देवों के कवन गंधकुटी नामक उच्च आसन बनाया जाता है समवशरण नहीं बनाया जाता। उनका उपदेश बिना समवशरण के होता है।

कार् मूक कवरी भी होते हैं जो मोत हो रहते हैं उनका उपदेश ही होता है ।

### पक्ष परमेष्ठियों के १४३ मूल गुण

धरदता छेयाला ४६ निद्रा अटटेर ८ सुर क्षणीया ३६ ।

उवग्भाया पखकीया २५ माहृण होन्नि अक्षपीया २८ ॥

### तीक्ष्णियों के ४६ गुण

अथ मनुष्या या कवलियों की अथवा तीक्ष्णियों में निम्नलिखित ४ गुण होते हैं ।

३४ अतिगम्य (अमत्कार गुण अद्भुत बानें) ८ प्रतिहाय ४ प्रकार के गुण (अनन्त अनुपम) ।

इनमें तीक्ष्णियों के १० अतिगम्य जन्म समय में १० कवलियों में पर स्वयं प्राप्त हैं और ३४ अतिगम्य तथा द्वारा होते हैं ।

### जन्म के १० अतिगम्य

अतिशय रूप सुगन्ध तन मांसि पमव निहार ।

प्रिय दितवचन अतुल्य बल रुधिर रक्षण आकार ॥१॥

अक्षय सहस्र आठ तन ममचतुर्क मगन ।

वज्रअवमनाराधनुत, य जनमन इश जान ॥२॥

यानी—१ साथकर का शरीर अत्यन्त सुन्दर होता है । २ उनका शरीर में सुगन्धि आती है । ३ उनका शरीर में कभी पसीना नहीं आता । ४ उनके शरीर की वाचन दक्षिण एसी होता है कि जीवन भर उनकी मम मूत्र (स्ट्री-वेगाव) नहीं होता । ५ उनका बदन बहुत हित शरीर भीठे होते हैं । ६ शरीर में अथ मनुष्यों से अधिक अमाधारण ल होता है । ७ उनका रक्त (खून) मात्र १ हाथर दूध के समान पके होता है । ८ उनके शरीर में १००८ शुभ बिन्दु होते हैं । ९

समस्तपुरतः सस्थान क मृगार उनके शरीर का प्रत्येक अंग और ठीक आकार में सुदोष होता है । १० वज्रनाथभारतीय सहनन के सार उनके शरीर की हृन्नी हृदिया क जोड़ जोड़ों की वीण क समान दृढ (मजबूत) होती है ।

कवन ज्ञान गमय क १० अतिशय

योगन शतृ क मं सुभिर गगनगमन मुग्य चार ।  
 नहिं अद्या उपरग नहिं नाहां कयलाहार ॥३॥  
 मत्र प्रिया इश्वरपनां गानि घडे नय कश ।  
 धनिमिष दग छाया-रदिग, दश काल क वश ॥४॥

मानी—१ कसली नायकरो क चारो ओर १०० योजन तक सुभिक्षा, (सुखाल) हाता है—अबाध नहीं जाना । २ केवनपानी तीव्र कर चलते समय पृथ्वी से ऊपर (अधर) घनत है । ३ जहाँ (समस्त धरण म) रहते है वहाँ उनका एक ही मुग्य चारा ओर गिराई देता है । ४ उनके शरीर से किंगी भी सूदम सूदन जीव का पान नहीं होता । ५ उनपर कोई उपसग (उपश्व) नहीं होता । ६ केवनपान हो जाने पर उनको न भूख लगती है न वे भोजन करते है, अनन्त वन के कारण उनका शरीर दृढ़ बना रहता है । ७ केवल ज्ञान ही जाने क कारण उनको समस्त प्रकार का पूण ज्ञान हा जाता है कोई भा विद्या पान कारिचिन (बिना जाना हुआ) नहीं रहता । ८ उनके नाखून और बान फिर बढ़ते नहीं है । ९ उनके नत्र मदा धाघे खुल रहते है—परक भपवते (मिचते) नहीं है । १० उनके शरीर का छाया नहीं पडती है ।

नेवो द्वारा जाने जाने १४ अतिशय

दन-रचिन हैं चारदश अद्भ मागवा भाप ।  
 धापम माहां मित्रता निर्मल निश झाकाश ॥१॥  
 होत कल फन अनु मत्र पृ वी कां व रमान ।  
 चरणकमल नन कमल ह्यै नभ ते जय नय वान ॥२॥

मन्द मुग्ध वधारि पुनि गधोदर का वृष्टि ।  
भूमि विषै कक नही ह्यमया सय सृष्टि ॥७॥  
धमचक्र आग रहै पुनि वसु भगल भार ।  
अनिशय श्री अरहत के, य चाँताम प्रकार ॥८॥

यानी—१ भगवान् की वाणी को मगध देव मध जीवों की भाषा मय कर देन है । २ भगवान् क निकट आय हुये जीव गात होकर परस्पर प्रेम क साथ बटते ह । ३ समस्त त्रिगायें साक होती हैं । ४ आकाग स्वच्छ हाता है । ५ दध उस स्थान का वायु मण्डल एसा त्रिषत्र कर लेते हे जिसम विभिन्न ऋतुआ म फलन फूलने वाल बहाँ के सभी वृक्षां पर फल-पूत आ जाते हे । ६ वही पृथ्वा का स्पण की तरह स्वच्छ कर दत ह । ७ चने समय दध भगवान् क चरणा क नीचे मुवणमय फलन क फूल बगात आत है । ८ दध आकाग म भगवान की जयकार बाने है । ९ मुगधिन धीमी वायु चरती है । १० मुगधित छोट जनरण (बूँट) आकाग म गिरत हैं । ११ वहाँ की पृथ्वी पर काट कक आँि चुभने वात पत्थाध नही रहने पात । १२ चारों आर ह्य का बानावरण ही जाना है । १३ सूय समान चमकदार धमचक्र (पहिय के आकार का पत्था भगवान् क पास दध रखत हैं विहार समय तब उस चक्र भगवान क आगे जाग चरत है । १४ छत्र चमर छत्रा दणन स्वस्तिक (साधिया) ठोणा भारी जीरकलश य साठ मगनिक (गुभ) द्रव्य दध भगवान् क निकट रखत हैं ।

आर प्राणिहाय (द्रव्य महस्वगानी पत्थाध)

अरु अगाक क निकट म मिहामन छविशर ।  
तीन छत्र शिर पर लसें भाभयल विद्यवार ॥१॥  
दिग्धध्वनि मुग्धन विरै पुरवृष्टि सुर हाय ।  
दारै चाँसठ खवर चल वात्र हुटुभि जाय ॥१०॥

यानी—१ भगवान क निकट अगोक वृक्ष होता है । २ सुन्दर मिहामन (भगवान उस पर चार अगुन ऊपर प्रथ

३ गिर पर तान छत्र ४ पीठ पीछे भगवान का शरीर की वाति का पुञ्जरूप भाग्यल । ५ मुख स विद्यवाणी प्रकट हाना । ६ आकाश से देवा द्वारा फूना की वर्षा । ७ यक्ष जेव भगवान पर ६४ वसर दोरते हैं । ८ जेव मनोहर मुरीला दुःदुभि धात्रा बजाते हैं ।

### अनन्त चतुष्टय

ज्ञान अनन्त अनन्त मुख दश अनन्त प्रमान ।  
बल अनन्त अर्हन्त मा इष्ट दश पहचान ॥१॥

यानी—१ अनन्तज्ञान २ अनन्त दान ३ अनन्त मुख और ४ अनन्त बल ।

अन ६६ गुणा म म अनन्त चतुष्टय आदि कुछ गुण अथ केचनियं मे भी होते हैं ।

### तीर्थकरों के चिह्न

तीर्थकरों के दाहिने पैर के अंगूठे पर जो चिह्न होता है वही चिह्न उस तीर्थकर की स्वजाति का इन्द्र अंकित कर देता है । प्रतिमाओं पर भी वही चिह्न अंकित होता है । वर्तमान युग के २४ तीर्थकरों पर प्रतिमाओं पर निम्नलिखित चिह्न अंकित किये जाते हैं —

- |                        |                            |
|------------------------|----------------------------|
| १ श्री ऋषभनाथ—बल       | ७ श्री मुपादेवनाथ माधिय    |
| २ श्री अजितनाथ—हाथी    | ८ श्री चन्द्रप्रभ—चन्द्रमा |
| ३ श्री सम्भवनाथ—घोडा   | ९ श्री पुण्यनाथ—मगर        |
| ४ श्री अभिनन्दनाथ—बंदर | १० श्री गीतलनाथ—कल्पवृक्ष  |
| ५ श्री सुमतिनाथ—चक्रवा | ११ श्री धर्मोसनाथ—गैडा     |
| ६ श्री वसुप्रभ—वसु     | १२ श्री वामुपुत्र—भसा      |

१३ श्री विमलनाथ क — गुरु	१६ श्रीमतिनाथ — कनक
१४ श्री अनन्तनाथ — गौरी	२० श्रीमुनिमुक्तानाथ — कच्छरा
१५ श्री धमनाथ — वस	२१ श्री नमिनाथ — नीलकमल
१ श्री श्री शान्तिनाथ — ईरण	२२ श्री नेमिनाथ — दण्ड
१७ श्री कुण्डनाथ — बरवा	२३ श्री पाशवनाथ — मर
१८ श्री अरनाथ — मछला	४ श्री महाधोर — सिद्ध

इनमें ग ऋष्यभनाथ का दूगग नाम आग्निनाथ तथा पुत्रगग का दूगरा नाम गृविधिनाथ और मन्नाधीर क दूमर नाम बद्धमान, सम्मति धीर अतिधीर हैं ।

### सिद्ध परमेष्ठी

समस्त (भागे) कर्म नष्ट हो जान पर जा पूज आत्म सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त कर सेते हैं व सिद्ध परमेष्ठी होने है । आठ कम नष्ट होने से उनमें आठ गुण प्रकट होते हैं ।

समहित दशन जान अगुरुद्वय अघरगाहना ।

सूयम वापयान निरावाय गुण सिद्ध क ॥१२॥

१ सम्पत्त्व (मोहनीय कम नष्ट होने से भाषिक सम्पत्त्व) २ दशन (अज्ञानावरण कम नष्ट होने से अनन्त दशन) ३ जान (ज्ञानावरण कम नष्ट होने से अनन्तज्ञान) ४ वीय (अंतराय कम के क्षय से अनन्त बल) ५ गूढमत्व (नाम कम क नाम से सूक्ष्मता) ६ अगुरुद्वय (गोत्र कम के अभाव से उच्चता नीचता का अभाव) ७ अवगाहन (आधु कम क न रहने से अवगाहन गुण) ८ अव्यावाय (वेत्नीयकम न रहने से अव्यावाय गुण) ।

### आचाप

मुनि-अथ क नाथक मुनि दीक्षा देन बाल मुनिरा को प्रायश्चित्त देने बाल आचाप परमेष्ठी हैं । उनमें अथ मुनिरा क २८ मूल गुण के सिवाय निम्नलिखित ३६ गुण और विनाय हाते हैं ।

द्वादश तप दश धमयुत, वाने पचाधार ।

पद् आग्रयण त्रिगुण गुण्य, आचारन पदमार ॥११॥

१० तप १० धम ५ आचार ३ गुण्ति और ६ आग्रयण से १६  
विशेष गुण आचार परमणी व हाते हैं ।

१२ तप

अनशन ऊनोर करे पतमण्या रस छोर ।

विविक्त शयनागन धरे कायनेश सुडीर ॥१४॥

प्रायश्चित्त धरि त्रिनययुत वैवायन स्वाध्याय ।

गुण उभयर्ग विचार क धरे ध्यान मन ताप ॥१५॥

१ अनशन (खारा प्रकार के भोजन को त्याग करके उता-  
करना) २ ऊनोर या अवमौन्य (भूलने से बचाना) ३ व  
परिसह्या (भाजन ग्रहण करने के लिए धर दाता आदि का नियम  
करना) ४ रस परित्याग (दूध, दही वी तेन नमक खाड (मीन)  
इन छ रसो मे से किमी एक दो आदि या सब रसो की छोडना), ५  
विविक्त शयनागन (एकांत स्थान म रहना गोत) ६ काय-वनेन  
(घटे होकर ध्यान करना) ये छ अंतरग तप हैं ।

७ प्रायश्चित्त (घातिन आदि मे खने हुन पोरो का दण्ड सेना)  
८ त्रिनय (रतनय तथा उतने पारव सपमी ता आनर त्रिनय करना)  
९ वैवायन (रोगी बाल बूढ मुनि की सेवा करना) १० स्वाध्याय  
(शास्त्रों का पठन-पाठन करना) ११ व्युत्सग (चित्त एकाग्र करके  
आत्मधितन करना) ये छ अंतरग तप हैं ।

१० धर्म

समा मादव आर्जेन सत्यधन चितपाक ।

सयम तप त्यागी सरन आर्किचन त्रिय त्याग ॥१६॥

१ समा (शोध का त्याग) २ मादव (जभिमान का त्याग),  
३ आजव (छत्र कपट का त्याग) ४ शीन (तोभ का त्याग) ५ सत्य





उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं । ११ अग १४ पूर (महान् वास्तो वा)  
ज्ञान हय २५ गुण उपाध्याय परमेष्ठी के हैं ।

११ अग

प्रथमहि आचारांग गनि, दूगो सूत्रहनांग ।

राग्य अग गांजा मुभग चौथा समवायांग ॥११॥

उपाध्यायव्यति पोचमा, जानुजया पन् अग ।

गुनि उपासकाध्ययन हे, अन्त कृत्तरा ठान ॥१२॥

अनुत्तरण उपाद दस सूत्रविपाक विस्तान ।

बहुरि प्रश्नव्याकरणजुत, ग्यारह अग प्रमाण ॥१३॥,

१ आचारांग २ सूत्रहनांग ३ स्थानांग ४ समवायांग ५ व्या  
ख्याप्रपत्ति ६ जानुजया ७ उपासकाध्ययन ८ अन्त-कृतदशांग  
९ अनुत्तरोत्पात्क दशांग १० सूत्रविपाक और ११ प्रश्न व्याकरण,  
ये ग्यारह अग वास्तव हैं ।

१४ पूर

उपादपूर्व अमापणी तीजा पीरमगाइ ।

अस्तिनास्तिपरवाद गुनि, पचम ज्ञानप्रवाद ॥१२॥

छुगे कमप्रवाद हे, मत्प्रवाद पहिचान ।

अष्टम आत्मप्रवाद गुनि नगमो प्रवाणयान ॥१३॥

विद्याभुवाद पूरव दशम, पूर्व कल्याण महत्त ।

प्राणवात् किरिया बहूल लोकविन्दु हे अन्त ॥१४॥

१ उपादपूर्व २ अमापणी ३ वायवान्, ४ अस्तिनास्ति प्रवा  
५ ज्ञान प्रवात् ६ कम प्रवात् ७ मत् प्रवात् ८ आत्म प्रवात्  
९ प्रत्यास्थान १० विद्यानुवात् ११ कल्याण पूर १२ प्राणवा  
१३ क्रिया विनाल, १४ लोक विन्दुसार में १४ पूर्वों के नाम हैं । इ  
११ अथा १४ पूर्वों में भिन्न भिन्न विषयों का विस्तार से विवेचन है  
११ अग १४ पूर्वों का पूण ज्ञान श्रुत-नेवती को होता है ।

## साधु परमेष्ठी

समस्त आरम्भ परिग्रह त्याग कर २८ मूल गुण शून्य करने वाले साधु परमेष्ठी हैं।

२८ मूल गुण

४ मन्त्राद्य ४ ममिद्धि ५ इन्द्रिय दमन ६ आत्मवृत्त ७ योगगुण ।

१ महाव्रत

हिंसा धनून तस्करी धमज्ज परिग्रह साध ।

राकें मन मत्र साध से, पच महाव्रत पात ॥२१८

- १ अहिंसा महाव्रत (जगत्प्रावर जीवों की हानि का त्याग)
- २ सत्य महाव्रत ३ अचोप महाव्रत (जगत्प्रीत्यन्त भीति निवृत्त करना), ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत (स्वाभाव कष्टकर शर्त का त्याग) -
- ५ परिग्रह त्याग महाव्रत (अन्तर्य बाहिर्य-प्राप्त) का त्याग ।

२ ममिद्धि

इहा भाया करणा पुनि पुन्य हृद्य ।

प्रतिष्ठापना गुण क्रिया, वासों मन्त्र-मन्त्र प्रदाय

- १ ईर्ष्या (कारण भागे की बुद्धि-दमन) - अन्ध
- ममिद्धि (हितकारा विषय पाते बचन हटा) - अन्ध (निष्क
- भावना करना) ८ आत्मनिरोपण (स्वभाव-निष्कृत्य मन्त्र मन्त्र
- कर उठाना रखना) ९ प्रतिष्ठापना (स्वभाव-निष्कृत्य मन्त्र मन्त्र
- जीव रमित स्थान पर करना) १० पाप हटा ।

५ इन्द्रिय मन ६ अन्ध - पुन

मपराश रक्षा ममिद्धि १०१ गुण ।

पच आधर्य ८ महाव्रत-मन्त्र मन्त्र मन्त्र ।

बाधर्य ग कष्टगुण मन्त्र मन्त्र मन्त्र ।

म मन गुण में पा १०१ मन्त्र मन्त्र ।

१ स्पर्शन (स्वचा चमड़ा) २ रसना (जीभ) ३ नासिका (नाक) ४ नेत्र (आँख) १ श्राव (कान) इन पांच इन्द्रिया को रज करना । १ सामायिक २ वन्दना ३ स्तुति ४ प्रतिफलण ५ स्वाध्याय ६ वायोसंग, ये छह आवश्यक है इनका अभिप्राय आचाय परमेश्वर के गुणा में छह आवश्यकों के अनुसार है ।

१ स्नान का त्याग (कभी स्नान न । करते—यदि कभी मृगुति पदाघ का स्पृश हो जाय तो निश्चल खड़े हाकर कमण्डल का पानी गिर पर से डाल लते है) २ भूमि पर मोना (पत्तण विस्तर पर नमी ली जमीन गिला तख्त पर एक कण्ट मे मोने है) ४ केन राच (गिर मूल दाडी व बालो को अपन हाथा से उपाडते है—कची छुरा आदि से नहीं बनवाते), ५ एक बार छोडा भोजन ६ दातुन नहीं करते ७ मडे होकर भोजन करना । हम तरह सब २६ मूल गुण साधु मार के होते हैं ।

— ० —

## मन्दिर क्या है ?

तीर्थकर जब अहस्त (धीतराग सधम) हा जाने हैं उस समय उनका दिव्य उपदेश कराने के लिये देवा द्वारा समवसरण नामक एक ब्रह्म विनाल और बहुत सुन्दर सभा मण्डप बनाया जाता है । उस समवसरण के बीच में दिव्य मिहासन पर (उत्तम चार अंगुल ऊँचे अधर) भगवान बठकर उपदेश दत हैं । दर भक्तिवग उनक गिर पर नीम छत्र चमान हैं चमर होरते हैं भगतिव बाजेव जाते हैं उनरी पीठ के पीछे भा मण्डल होता है । प्राय उसी के अनुकून (नकन) रूप में मन्दिर बनाया जाना है । बोलगाव प्रतिमा का विराडमान करने के लिये मिहासन तथा उनके ऊपर छत्र पीढ़े भामण्डन चमर आदि की योजना की जाती है ।

मन्दिर प्रतिमा बनाने की विधि क अनुष्ठान शिष्ट कन एक बरत  
(छोटे हुए लोगों को देखकर), मानव धर्म प्रतिहारों के  
साथ ही उनी धानु क बनने काठिणे ईगादि उपान प्रियदर्शियों के  
साथ बनेछों ग्यार्ना पर है। उरणा में कनव विमानन धर्म की  
कानना नर्ग की धाना। तिन प्रतिमाओं के साथ उनेरे हुए एक मन्दि-  
र नहीं हान उनके निचे एक चमर भाषणन विमानन धर्म की कानना  
कृपक कर सु की धाना है।

इस तरह मन्दिर समन्वयन का कन कृष्य अनुष्ठान है और एक  
चमर भाषणन धर्म प्रतिहारों का अनुष्ठान है। कानना का परत  
महत्त्व प्रकट करने क निच तथा कानना क ऊपर (धन पर) कनगाध  
रत का परत पडने पावे इस अनिवाय से मन्दि क ऊंचा दिखान  
बनाया जाता है। तिनका दूर से देखने की पुण्य पवित्र स्थान मन्दि  
का पना मय जाता है और हुण्य में पवित्र भाष उरत होने मन्दि है।

### मन्दिर की विनय

परम गुड अहम प्रतिमा क विराजमान होने में मन्दि एक पवित्र  
स्थान हाना है उनकानव भेचनाओं (१ पार्येष्टी तिन प्रतिमा तिन मन्दि  
तिन वाणी धीर तिन पन) में मन्दि भेचना माना गया है अन् कन्दि  
का भी सम्मान करना चाहिये उनको पवित्र स्थान चाहिये। तिन मन्दि  
तीर्षकरा मुनियों धर्म के कानना कानने क तथा मुरतु हाने क स्थान  
पवित्र और काननीय तीर्थ स्थान मान जात हैं उन स्थाना का कानना  
करत समय उन तापकन तथा कानना का विमानन कानना कानने  
ता मन पवित्र होना है तीर्थ कनी ही कान मन्दिओं क विनय म है।  
मन्दि भा भगवान् की मूर्ति तथा तिनशाली विराजमान हाने में पवित्र  
स्था। तन् है कानना का पवित्र करने के विच सर्व-कानन है। अन्  
मन्दि का भी सम्मान विनय करना चाहिये।

मन्दि का विनय यहा है कि स्नान करके, पवित्र कानन कानन कर

विश्व भावना से मन्दिर में आवें। भगवान् के सामने जाने से पहले पर-  
ने भी जल से धो लें। इय और विनय के साथ भीतर प्रवेश क-  
भीर वहाँ जब तक रहें भगवान् का दक्षिण स्तम्भ, पूजन, सामाजिक  
वाध्याय आदि धार्मिक कार्य करते रहे जब अपनी सुविधा (पुस्तक)  
समय के अनुसार इन धर्म कार्यों को कर चुके तब मन्दिर के बाहर आ-  
जायें। शान्ति के साथ वहाँ से चले आवें।

मन्दिर में घर गृहस्थाश्रम की चर्चा करना निम्नी व्यक्ति की नि-  
यन्त्रणा करना असत्य बोलना चारी करना किसी स्त्री-पुरुष को कुद-  
में देखना, व्यथ बकवास करना, थूकना भोजन करना, खेलना आ-  
कार्य कभी न करने चाहिये। ऐसे कार्य करने से बहुत पाप-बन्ध हो-  
ते हैं। धर्म साधन के लिये मन्दिर में प्राये हुये अथ स्त्री पुरुषों को  
साभ होता है अतः मन्दिर की पवित्रता सुरक्षित रखने के लिये  
कोई अनुचित शान न करनी चाहिए।

— • —

### अकृत्रिम चत्वालम

जगत् में बहुत से ऐसे मन्दिर भी हैं जिनको किसी मनुष्य ने न-  
बनाया अनादि समय से चले आ रहे हैं। उनको 'अकृत्रिम चत्वालम'  
कहते हैं। उन अकृत्रिम चत्वालमों में अहं त भगवान् की बहुत मनोह-  
प्रतिमाएँ विराजमान हैं। किसी लीचकर विनेष की प्रतिमाएँ नहीं हैं।

## दर्शन की विधि

भगवान् के सामने जाते हैं अथ विनय के साथ हाथ जोड़ कर  
अथ भुजायें क्षमोन्मत्त म न गडकर काई स्तुति स्तोत्र का कोई श्लोक  
सूत्र पढ़कर साथ में साथ हुए चावल चढ़ावें। फिर पृथ्वी पर अष्ट

(लेखक) अथवा पचांग (घुटने के बल बढ कर दो पर दा हाथ फिर पांच अंग) नमस्कार करें यानी—घुटने के बल बढकर कुन्हे हाथ हाथा को तथा मस्तक को पृथ्वी से लगावें—चार देवे। दा हाथ जो पर लगी छिर कमर और पाठ अंग माने गये हैं। अष्टांग नमस्कार में इन सभी अंगों का भुक्तानर नमस्कार किया जाता है।

### प्रदर्शिका

धोर लेने के बाद हाथ जोडकर गडा हा जावे और अक्षर म्बर में एगट गुड उचारण के साथ मस्कृत भाषा का या शिवा दा म्बर पढना हुआ अपनी बाया और से बनकर धा का घारे धार तीन प्रति करना है। तन्मन्तर स्नात्र पूरा कर लेने पर छिर एकप या त्रया नमस्कार पूराक धोक देवे।

### छ्यान रहन योग्य छाने

एगन करने समय अपना टपि (निगाह) भद्रमन क र्त्तिया पर ही रहे अन्य कोई वस्तु न लेने। उम समय सोच है न्दिय गकर एमा समय हा जावे कि मन बचन वाय म अन्य र्त्तिया न धान पावे। भगवान की मूर्ति को लकृफ हाकर देखें। उम क र्त्तिया प्रसी भगवान का आहृति (मूर्ति) है यथा हा एगनना मेरे भाग्मा म प्रकृ हो त्रैम भगवान गिरातन छत्र का र्त्तिया विभूति एगते हुए भा उमम निवित्त (अङ्गन) रहे एगनना र्त्तिया विभूति होने हुए भी उमम अनित्त एगते। उम क र्त्तिया नवना भाव हा उनका न कोई मित्र या न कोई गुरु क र्त्तिया मरे ह्मय है आहृत ही इरपा विनयन कर।

परिक्रमा को समय यदि कोई र्त्तिया पुला का उहा हा तो उम पावे छ न निकव की उ का आर न विरुधे म्बर न न उठे तब तब लहा रहे भावे न बहें।

दहन करते समय इस तरह लड़े होना या परिष्कार करनी चाहिये जिससे दूसरे पवित्रों को दहन पृथक् में बिछन न पड़े ।

दहन कर लेने के बाद भगवान् के अभिषेक का गंधोष्क अपने हाथ की अंगुलियों को गौत्र के पास रखने अथवा जल में डुबाकर छुड़ कर लने पर उगलियों से (गंधोष्क) लेकर अपने गिर, मस्तक, नेत्र, गन्ध छाती आदि उत्तम अंग पर लगाने और फिर गंधोदक वाली उगलियों को पाम में रखने जल में डुबाकर धो लेवे जिससे पवित्र गंधोष्क वाली उगलियों का सम्पर्क किसी अन्य अपवित्र पदार्थ से न होने पावे । भगवान् के अभिषेक का जल गंधोष्क या प्रणाल जल कहा जाता है ।

### चावल

भगवान् के सामने खानी हाथ न आना चाहिए कम से कम चावल खाने के लिये हाथ में अवश्य लाना चाहिये । चावल खाने का अभिप्राय यही है कि जिस तरह धान से धिन्का उतर जाने पर फिर धान में उगने की शक्ति नहीं रहती इसी प्रकार भगवान् के दर्शन भक्ति करने से मेरी आत्मा भी ससार में उगने वाली— फिर जन्म लेने योग्य न रहे ।

### प्रतिभ्रमा

भगवान् की गण कुटा समवसरण के बीच में होती है और पूर्वमूढ हाते हुए भी भगवान् का मुख देवी अतिशय के कारण चारों ओर दिखाई देता है अतः दहन करने वाले स्त्री-पुरुष भगवान् के चारों ओर, परिष्कार के चारों ओर दिखाई देने वाले मूर्त हैं । वही अनुकरण मन्त्र में देवी की प्रशिक्षण है । मन बचन, काय तीनो योगो प्रशिक्षण दी जाती हैं ।

भूय सुमह पर्वत को प्रशिक्षण वाया और स घूम कर करता है उसी के अनुरूप प्रशिक्षण करना चाहिये । भगवान का दाहिना भाग भी पहिले तमा आ सकता है जब कि हम अपने बायी ओर से प्रशिक्षण दें । दाहिना भाग अधिक शुभ माना जाता है क्योंकि आगीर्वाण देने का ति स्थापित करने उपरान्त दिन आति किसी भी शुभ कार्य करने में दाहिना हाथ ही उरता है ।

### गधोदक

तीथकर क शरीर में जल से हा सुगंध आती है अन उनक शरीर का प्र शानित जन ( अभियेक का जल) भी सुगंधित हाता है इसी कारण प्र शान को गध + उदक—गधोदक यानी—सुगंधित जल कहते हैं । जस गुण का वर्ण रज का मस्तक से उगान पर मन में गुह का गौरव जाग्रत होता है इसी प्रकार भगवान का अभियेक जल—गधोदक अपने उत्तम (गामिक ऊपर के) अर्गा से लगाने पर भगवान में भक्तिभाव जाग्रत होना है ।

गधोदक उगान समय पठना चाहिये ।

निर्मल निमलीकरण पत्रिण पापनाशकम् ।

जिनगधोदक वन्द्य अष्टमविनाशकम् ॥

अथवा

निमल स निमल धर्ता यथनाशक सुखमीर ।

वन्दू तिन अभियेक कृत यद् गधोदक नीर ॥

### पूजन

अपने चित्त में भावान् के गुणा का विशेष रूप में मन वचन वाय  
 विनय करने के अभिप्राय से जल चन्दन अगत (बिना



दूटे चावल) पुष्प नवछ, दीप घण्ट, फल इन द्रव्यों द्वारा पूजन किया जाता है। पूजन करते समय भूल व्यास, माह अपान, गानावरण आदि कम सांसारिक सात्ताप काम वागना रा नष्ट करने अविनायक मूर्ति पद प्राप्त करने की पवित्र भावना में त्रय आदि द्रव्य भगवान् क सामने चढ़ाए जाते हैं।

### पूजन का अङ्ग

प्रथम भगवान् का शुद्ध जल से 'अभिषेक' करना फिर पुष्प चढ़ाते हुए ठीने में आह्वान (सुगान की विद्या—अत्र अक्षर अक्षर रूप से) फिर स्थापना (अत्र तिष्ठ तिष्ठ रूप से ठीने में पुष्प चढ़ाते हुए भगवान् क स्थापना का क्रिया) तत्पश्चात् मन्त्रधारण (अथ मम सन्निहितो नम भव कहते हुए हृदय क निवृत्त करने का क्रिया) ठीने में पुष्प क्षेपण करना होता है।

इतना करने क पीछे अष्ट श्रव्या का जा पमण जल आदि द्रव्यों के छन्द पत्रकर ॐ ह्रीं आदि मन्त्रों द्वारा चढ़ाया जाता है, सो पूजन है। तमस्त पूजन कर लेने क अनन्तर ध्यातिपात्र पत्रकर ठीने में पुष्प चढ़ाते हुए पूजन की समाप्ति करना। तमस्त पूजा के अङ्ग हैं।

### अङ्ग शुद्धि

पूजन करने क लिये शुद्ध जल से स्नान करके शुद्ध धोती दुपट्टा पहनना चाहिये। अधोवस्त्र (धानी) और उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टा) अथवा अथवा धाना चाहिये। धोती का हा भाग नहीं आड़ना चाहिये। दुपट्टा फिर पर आड़ लेना चाहिए। कुण्ड का जल शुद्ध होता है उसका बिद्वाना भा पहूँचाई जा सकता है। अन्य पूजन के सामग्री कुण्ड के जल से धोनी चाहिये।

## दिशा

पूव और उत्तर दिशा शुभ मानी गई हैं। मूय का उच्य पूव दिशा में जाना है ममवर्णन में तीर्थकर का मूय पूव दिशा का जोर जाना है, अतः वह दिशा शुभ है। उत्तर दिशा में मुद्रा पवन है त्रिम पर विचार दिशात्रा में १६ अर्हणम त्रिनात्र है तीर्थकर का जन्म त्रिभेक भां मुद्रा पवन पर होता है। त्रिभेक क्षेत्रा में मनी तीर्थकर जान है वह त्रिभेक क्षेत्र उत्तर दिशा में है। इत्यादि धारणाओं से उत्तर दिशा को शुभ माना जाता है। अतः सामयिक पूजन आदि शुभ कार्य करते समय जहाँ तक हो सक पूव या उत्तर दिशा का धोर दूखाना मुक्त रचना चाहिये। वी तथा मन्दिर का शर भी पूव या उत्तर दिशा की धार रक्षता जाना है।

मगवान् का मूय मन्दि पूव दिशा की धोर ए ए पूजन करने समय मगवान् के साहिनी धार अर जाने में भक्त-नुजारी का मूय स्वय उत्तर दिशा का धार हा जाना है। जनी नर हा मग पूव या उत्तर दिशा की धार मूय करव पूजन आदि शुभ कार्य करने चाहिये।

## अभिषेक के अनन्तर

अभिषेक कर सन के पदवान् अष्ट श्य (जल चन्दन अत पुष्प मवेद्य दीप, मूय और पत्र) धाल में सजाकर रक्षता चाहिये एक अय खाली धाल में मयूर चन्दन में स्वस्तिक (साधिया) बनाकर साधिया चन्दन के त्रिये रक्षता चाहिये। एक ठोने पर भी स्वस्तिक बनाकर उम टोने का धाल के आगे रक्षता चाहिये एक पात्र जल चन्दन चक्षने के निये जाना चाहिये।

यह सब कर सन पर जमावसार मात्र पूवक स्वस्तिक मगल विधान (श्रीकृष्णभा न स्वस्तिक तथा स्वस्तिक्रियामु परमपमो न, इत्यादि पाठ तक) स्वस्तिक मगल विधान कर सन पर

शास्त्र गुरु विद्वांसो धर्मस्य वर्तमान २० तीर्थकर मित्र परमेशी आदि की पूजन प्रारम्भ करने में प्रथम ठीने में उस पूजन सम्बन्धी आह्वान (पूजन के लिये भक्तिभाव में बुलाने की क्रिया) स्थापना (ठीने में स्थापित करने की क्रिया) करना चाहिये।

### प्रतिमा के सम्मुख

जिस किसी स्थान पर की पूजा करने की अभितापा हो और उस तीर्थकर की प्रतिमा सामने बेनी में विराजमान हो तब भी आह्वान स्थापना और सन्निधीकरण क्रियाएँ अवश्य करना चाहियें क्योंकि पूजन विधान में ये तीनों क्रियाएँ पूजन की भय मानी गई हैं। जने हम अपने घर में आने हुए अतिथि के सम्मुख आकर प्रणित करते हुए आह्वय आह्वय आदि शब्द उच्चारण करते हैं इसी प्रकार सम्मुख विराजमान तीर्थकर मूर्ति का भी पूजा करते समय भक्ति सूचक क्रिया आह्वान स्थापना सन्निधीकरण करना उचित है।

आह्वान स्थापना सन्निधीकरण करने के पश्चात् अष्ट द्रव्य स पूजा करना चाहिये।

### विसर्जन

सम्पन्न पूजाओं पर लेने के पश्चात् शांति पाठ पढ़ना चाहिये तदनंतर अन्त में पूजन क्रिया की समाप्ति के अनुरूप पूज्य तीर्थकर आदि की सम्मान और भक्ति के साथ विद्या देने की क्रिया करनी चाहिये। इस क्रिया का नाम विसर्जन (समाप्त करना) है।

कुछ भाइयों का क्याल है कि  
द्वन्द्वता का विद्या देने का  
है। विसर्जन क्रिया पूजा का  
जाना है विसर्जन भी उतही

पद तथा है कि अष्टत्रिंशत्तरास्यो की पूजा का निम्नलिखित पद कुछ पुस्तक प्रकाशकी ने निम्नलिखित रूप में अगुद्ध छाप दिया है।

कृशाष्ट्रिमचारुचैर्यानिलयानित्य त्रिलोकीगतान्  
 यद् भावनम्यतरान् च तिवरान् कल्पामरान् सर्वान् ।  
 मन्गाधामतपुष्पशमचक्रै मरीपूपै फल,  
 नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां घातये ॥१॥

इस पद्य की दूसरी पक्ति अगुद्ध है तन्नुसार पहली पक्ति में अष्टत्रिंशत्तरास्यो का उल्लेख करते हुए दूसरा पक्ति में अप्रासंगिक भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क और कल्पवासी देवा का नाम आ गया है जिसमें भ्रम में पड़ कर लोगो ने समझ लिया है कि इस पूजा में चारो प्रकार के ससारी देवा की पूजा भी की जाती है और विसर्जन में इन ही चतुर्निराय देवा का विसर्जन किया जाता है किन्तु यह धारणा गलत है। आरा का प्राचीन गुद्ध पूजन पाठ की प्रति के अनुसार उक्त पद्य की दूसरी पक्तियाँ ये हैं—

यद् भावनम्यतरस्य तिवरस्वर्गामरावासान्

इस गुद्ध दूसरी पक्ति का अर्थ प्रकरण के अनुसार अष्टत्रिंशत्तरास्यो का विवरण दत्त हुए या है —

भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिष्क तथा कल्पवासी देवा क (विमानवर्ती) चत्यानया की वन्दना करता है।

अन प्रत्येक भाई का अपनी पूजन पुस्तक में अष्टत्रिंशत्तरास्यो पूजा की यह पक्ति सुधार करके विसर्जन का ठीक अभिप्राय पूर्व लिख अनुसार समझना चाहिये।

पूजा के विषय का विशेष विवरण पूजन रत्नाकर' पुस्तक में दिया गया है वही से पद कर ज्ञान कर।

## अभिषेक का उद्देश्य

तीर्थंकर के जन्म समय समस्त पवन पर तीर्थंकर का दर्शन के द्वारा अभिषेक होता है, किंतु अहं त रूप में प्रतिष्ठित प्रतिमा का यह जन्म अभिषेक सा होता नहीं और न अहं त ही जाने के बाद तीर्थंकर भगवान् का समवसारण आदि में कहीं कभी विना के द्वारा अभिषेक होता है। जन प्रतिमा का अभिषेक ताथङ्कुर की रिती पटना का अनुकरण नहीं है। इस कारण अभिषेक करते समय जन्म कल्याणक की कविता (महम्म अठानर कता प्रभु के गिर सुर आदि) पढ़ना उचित नहीं। अभिषेक के समय अभिषेक पाठ ही पढ़ना चाहिए। अभिषेक पाठ सम्पन्न तथा सिद्धी भाषा का भिन्न भिन्न है।

त्रिम प्रकार अहं त भगवान् धुरा कृपा (भूम ध्यात) आदि दायास रहित है जन उपा जन जन और नवद्य (पनवान पववान), पल माने की आवश्यकता नहीं है। पूजन में भक्त पुनारा अपा धुधा तथा जन्म मरण आदि दायास मुक्त होन के अभिप्राय में उन पदार्थों की भगवान् के सामने चलाता है, भगवान् की मित्रान पिलाने का अभिप्राय अष्ट द्रव्य चलाते में नहीं रखना गया है।

इस प्रकार अहं त भगवान् समस्त मन रहित परम औदारिक शरीर धारक है उनका अभिषेक कराने में उनका शरीरिन मन दूर नहीं होता न एसा किया ही जाता है। किंतु एक भक्त भक्तियोग भगवान् के माय निबट सम्पक म्थापिन करन के निय उाके शरीर का स्पर्श करना चाहता है भक्तिवग उनके चरण की धूम अपा मस्तक से लगाता चाहता है अपनी भक्ति विषयक इन इच्छाओं का सम्पन्न (पुण) करने के लिय पूजन के अंग रूप में पूजन से पश्चित अभिषेक किया जाता है।

अभिषेक का करने समय अभिषेक करने बाद के हृदय में तथा अभिषेक करने वालों के हृदय में अच्छा भक्तिभाव उत्पन्न होता है।

इसके विवाय भगवान् के अभिषेक का जल आदि उत्तम वस्तुओं से मगा कर भगवान् के स्पर्श (दूने) की पवित्र इच्छा की आदिक (किसी अघ सं) पूर्ति की जाती है ।

अभिषेक के द्वारा भगवान् की शीतराग मुग्ध और भी अधिक श्रेष्ठमान्यता उठती है यह बिना चाहा गौण प्रयोजन भी मिट हो जाता है

## अभिषेक पाठ

[श्लोक ५० हरप्रसन्नराय कृत]

जय जय भगवतं सदा मगन मूल महान् ।  
शीतराग सवज्ञ प्रभु नमो ज्योतिर्युग पात ॥

[चातुर्विध मगन]

श्री जित जग म लेगो की बुधिवत्त जू,  
जो तुम गुण वरनति कर पावे मन्त्र जू  
इन्द्राग्नि सुर चार ज्ञानधारी मुग्धि  
कहि न सकें तुम गुणगण हे प्रभुवन धनी ॥

अनुपम अमित गुणगुणति चारिधि ज्यो मलोकाकाण है ।  
किमि घरे उर कोय म गो अकम गुणमणि राग है ॥  
य निज प्रयोजन मिटि की, तुम नाम म ही शक्ति है ।  
यह चित्त म सरधान याने, नाम ही सं भवित है ॥

जानावरणी दाने आवरणी भने  
कम मोहनी अ तराय चारो हने ।  
साकानोव विलोपयो केवल-जान मे  
इन्द्राग्नि के मुकुट नये सुरधान म ॥

तत्र इन्द्र जा यो अवधिते उठि सुरन युत बन्त भयो  
 तूम पुण्य को प्ररयो हरी हू मुदित धनपति सा चया ।  
 अब वणि जाय रधा समवमनि मफल गुरपद को करी,  
 साभान् श्री अरहन्त के दगत करो कल्पय हरी ॥२॥

ऐस वचन सुने सुरपति क धनपती  
 चल आयो तत्काल मौ धारे प्रति ।  
 वीनराम छवि नेवि गळ जय जय चयो  
 दे प्रच्छिन्ना वार वार बन्दत भयो ॥

अति भवि भिनो नम्र चित हू समवगरण रच्यो सही,  
 ताकी अनूपम गुभगती को कहन समरथ फोउ नहीं ।  
 प्राकार तारण सभामण्डप वनक मणिमय छात्रही  
 नगजहित ग धकुटी मनोहर मध्य भाग विराजहीं ॥३॥

सिहासन तामध्य बयो अद्भुत लिय  
 तापर वारिज रच्यो प्रभा लिनकर छिय ।  
 सोन छत्र मिर शोभित चौसठ चमर जी  
 महा भक्तियुन डोरत चमर तह अमर जी ॥

प्रभु तरनतारन वमन ऊपर अतराग विराजिया  
 यह वीतराग दगा पतन्त्र विनोक भविजन गुल लिया ।  
 मुनि गानि द्वाण्य मभा क भवि जीव मरुत नायक  
 बहु भाति वारम्बार पूज नम गुणगुण गामकें ॥४॥  
 परमौलिकि विध्य देह पावन गही  
 शुधा लुपा चिन्ता मय गन् रूपण नरी ।  
 जम जरा भुति अरति शोक विमय नरा  
 राग राय गिना मन् मोह सब यत ॥

अम विना अम-जन रहित पावन अमर ज्योति स्वरूपजी  
 गारणागतन की अगुचिता हरि करत विमन अनूप जी ।

ऐस प्रभु की छात्र मुझ बी मरत रक्ष करे  
जस भक्तिवत् मन उचित ते हूष भानुकिण दारद धरे ।

तुम तो गह्र पवित्र यही निश्चय भयो

तुम पवित्रता हूँ नहीं मरतन टयो ।

मैं मनीन रागादि मनर हूँ रह्यो

महा भक्ति मन म समु विधि वग दुख गह्यो ॥

बीसो अनन्तो बाज यह मरी अगुनिया ना कई  
निग अगुचितार एक तुम ही भरहु वादा निन कई ।

अब अष्ट कम विनाग सब मन रोष रागादि हूरो  
एकरूप कारागह ते उदार निव बासा करो ॥६॥

मैं जानत तुम अष्ट कम इति निव गव

आशागमन—विमुक्त रागवजिन भय ।

पर तयापि मेरो मनग्य पूरत मही

नय प्रमान त जाति महा माना मही ॥

पापाधरण तजि हूँन करता विन म एन धरु  
साक्षात् श्री अद्वैत का माना गहन परमा कहे ।

एमे विमत परिणाम हात अगुम नगि शुभवचत  
विधि अगुम नगि शुभ वच ते हूँ राम सब विधि-नाग त ॥७॥

पावन मर नयन भय तुम दरत ते

पावन दानि भये तुम चरतन पागा ।

पावन मन हूँ गया विहार ध्यान त

पावन रचना माना तुम गृण गान ते ।

पावन मई पराद्वय मेरा भयो मैं पूरण धनी  
मैं गक्ति पूवक भक्ति कीनी पुन भक्ति नही बनी ।

घय ते बहमापि भवि निन नीव निवधर वी धरा  
भरि क्षीरसागर आदि धन मणिकुमन भरि भक्ति कर ॥८॥



विधन सधन वन गहन-रहन प्रचण्ड हो  
 मोक्ष महात्म दलन प्रबल मारतण्ड ही ।  
 ब्रह्मा विष्णु महेश आदि राजा धरो,  
 जग विधी जमराज नाग ताबो करो ॥

आनन्द करण दुख निवारण परम मंगलमय सहा,  
 मोक्षो पतिन नहि और तुम सो पतिततार सुयो नहीं ।  
 वितामणी पारम कल्पतरु एक भव सुखकार ही  
 तुम भक्ति नौका जे चढ त भय भवन्धि पार जो ॥१॥  
 तुम भवन्धि त तर गये भये निबल अविचार ।  
 तागतम्य इस भक्ति को हमे उतारो पार ॥१०॥

## दर्शन के समय क्या पढ़ें ?

भगवान् की बेनी के सामने जाते हुए प्रथम ही निम्नलिखित  
 मन्त्रोक्त मन्त्र उच्चारण करें—

ॐ जय जय जय नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु  
 शमो शरत्ताश शमा सिद्धाय शमा आहिरियाय,  
 शमा उज्जमायाय शमो लाए रश्म्याहुय ॥

(नमस्कार मन्त्र में प्राकृत भाषा में पूर्वोक्त पाँच परमेश्वरों  
 को नमस्कार किया गया है ।) शमावहार मन्त्र पढ़ कर नीचे लिखे  
 वाक्य पढ़ें ।

पसो पञ्च शम शमो सञ्च पावण्यशासयो ।  
 मगलाय च सधमि पदम हृषद् मगल ॥

[यानी—पहले पाँच परमेश्वरों को नमस्कार रूप मन्त्र सब पापों  
 का नाश करने वाला है और समस्त मंगलों में पहले का मन्त्र रूप है ।]

चत्वारि मगल अरहन्ता मगल सिद्धा मगल साहू मगल केवलि-  
पण्णतो धम्मो मगल । चत्वारि लोगुत्तमा, अरहन्ता लोगुत्तमा, सिद्धा  
लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमा । चत्वारि  
सरण पव्वज्जामि अरहन्ते सरण पव्वज्जामि सिद्धे सरण पव्वज्जामि  
साहू सरण पव्वज्जामि केवलिपण्णत्त धम्म सरण पव्वज्जामि ।

(इन वाक्यों में समास में सबसे अधिक मगल यानी पुत्र सबसे  
अधिक उत्तम और समास में शरण यानी आश्रय रूप—

१ अरहन्त २ सिद्ध ३ साधु और ४ जन धर्म को बताया है ।  
चत्वारि मगल = चार पन्नाय मगलीक हैं अरहन्ता मगल = अहत भगवान्  
मगल रूप हैं । सिद्धा मगल = सिद्ध भगवान् मगलीक हैं । साहू मगल =  
साधु परमेष्ठी मङ्गल रूप हैं । केवलिपण्णतो धम्मो मङ्गल = केवली  
भगवान् का उपदेश दिया गया धर्म मङ्गलमय है । चत्वारि लोगुत्तमा =  
जगत् में चार पन्नाय उत्तम यानी सबसे श्रेष्ठ हैं । अरहन्ता लोगुत्तमा =  
अर्हन्त भगवान् लोक में उत्तम है । सिद्धा लोगुत्तमा = सिद्ध भगवान्  
जगत् में सबसे श्रेष्ठ हैं । साहू लोगुत्तमा = साधु परमेष्ठी लोक में  
उत्तम हैं । केवलि पण्णतो धम्मो लोगुत्तमो = केवली भगवान् का उप-  
दिष्ट धर्म इस जगत् में उत्तम है । चत्वारि सरण पव्वज्जामि = ये चार  
पन्नायों की शरण लेता हूँ । अरहन्ते सरण पव्वज्जामि = अरहन्त भगवान्  
की शरण लेता हूँ । सिद्ध सरण पव्वज्जामि = सिद्ध परमेष्ठी की शरण  
लेता हूँ । साहू सरण पव्वज्जामि = मैं साधु परमेष्ठी की शरण लेता  
हूँ । केवलिपण्णत्त धम्म सरण पव्वज्जामि = मैं केवली भगवान् का उपदिष्ट  
धर्म की शरण लेता हूँ । फिर नीचे लिखा छंद पढ़ें ।

शुभम अजित सभवं धम्मिणं दनं सुमति पदमं सुपाश्र्वजिनराय  
चन्द्र पद्मप शीतल ध्यास नमि वासुदेय पूजत सुरराय ॥  
रिमल अरहन्त धर्म जन्म उज्ज्वल शान्ति कुं शु अरि मल्ला मनाय  
मनिमव्रत नमि नेमि पारश्व प्रभु वन्द मानि पद पुण्य च्छदाय ॥

इतना पढ़कर भगवान् क आग चावम चढ़ा कर धोक द।  
सग्नतर पठनीय स्तोत्रो म से कोई एक अथवा ससृज भाषा का  
भक्तामर आदि जो भी स्तोत्र यात्र हो पढ़ना हुआ भगवान् का  
प्रशिक्षण दे।

### शास्त्रजी को नमस्कार करने की कविता

बीर हिमाचल त निक्सी गुरु गीतम क मुख-कुण्ड डरा है।  
माह महाचल भद चली जग की जड़तानप दूर करी है ॥  
ज्ञान पयोनिधि भाहि रसा, बहु भय तरगनि सों उछरी है।  
ता शुचि गारण गगनदी प्रति मैं अजुलिकर सीस धरी है ॥१॥  
या जग मंदिर म अनिवार अनान अघेर छयो अति भारी।  
जीजिनका घुनि दीप शिक्षामय जो नहि होत प्रवागनहारी ॥  
तो किस भाति पत्तारथ पाति कहा लहने ? रहते अविचारी।  
या विधि सत कहै घनि है घति है जिन-वन बड उपकारा ॥२॥

जिन-वाणी के ज्ञान से, सूझे लोकालोक।

सा वाणी मस्तक चढो सदा देत हू धोक ॥

### बारह भावना भूधरदासकृत

बोहा—राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।

मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार ॥१॥

दल बन देई देवता मात पिना परिवार।

मरती बिरिया जीव को कोऊ न राखनहार ॥२॥

दाम बिना निघन दुखी तृष्णावग घनवान।

बहु न सुख ससार म सब जग देखा छान ॥३॥

आप धक्का अवनरे मरे अक्ला होय।

यो कबहु या जीव को साथी सगा न बोय ॥४॥

बहु नहु अपनी नहीं तहाँ न अपना बोय।

पर-अस्वति पर प्रकृत है पर हैं परिजन-तोय ॥५॥

दिप चाम चार मडो, हाड पीजरा देह ।  
भीतर या सम जगत म और नहा घिन गह ॥६॥

सोरठा मोह-नीं क जोर जगवासी घूमै सग ।  
कम चोर चहु ओर सरवम सूँ सुध नही ॥७॥  
सतगुरु दैय जगाय मोह नीं जब उपगमै ।  
तब कहु बने उगाय कम चोर आवन रुक ॥८॥

दोहा—ज्ञान-नीप तप-सेल भर घर गोध भ्रम छोर ।  
या विधि बिन निरसें नही बडे पूरव चोर ॥९॥  
पंचमहाव्रत मरवन समिति पंच प्रकार ।  
प्रवन पंच हिन्य विजय धार निजरा सार ॥१०॥

चौहूँ राजु उत्तम नभ नाक पुण्य मठान ।  
ताम जीव अनान्ति भरमन है बिन पान ॥११॥  
पन कन कचन राज-मुख सबहि मुनभ कर जान ।  
दुनभ है समार में एक पषारथ पान ॥१२॥  
जाचे सुरत देव मुख चितन चिन्नारन ।  
बिन वाचे बिन चितये धम सरन मुख बन ॥१३॥

— ० —

### प० ब्रुधजन कृत स्तुति

प्रभु पतिनपावन मे अपावन चरण आया कारण जी ।  
यो बिरा आप निहार स्वामा माटि जामन मरण जी ॥  
तुम ना पिछा पो जान मायो देव विदिय प्रकार जी ।  
या बुद्धि सेनी निज न आया भ्रम गियो हिनकार जी ॥१॥  
भव विकट बन म कम बरी पान धन मेरी हरो ।  
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय अनिष्ट गति घरतो फिरी ॥  
घनि घडी यह घनि त्विम ये ही घनि जनम मेरी भयो ।  
अब भाग्य मेरे उर्य आया दरग प्रभु वा लखि लयो ॥२॥

श्वि बीतगो नग्न मुद्रा दृष्टि नासा पं धरे ।  
 वसु प्रतिनाय अनन्त गुणयुक्त, कोटि रवि को छवि हरे ॥  
 मिटि गयो तिमिर मिथ्यासद मेरा उग्र्य रवि आतम भयो ।  
 मा उर लय ऐसा भया मनु, रक चिन्तामणि सयो ॥३॥  
 मै हाथ जाडि नवाऊ मस्तक चीनऊँ तुव चरण जी ।  
 सर्वोत्कृष्ट त्रिवीरपति त्रिन मुनो तारण तरण जी ॥  
 पार्श्व नही मुख्यास पुनि नरराज परिजन साय जा ।  
 बुध याचहू तुम भक्ति भव भव दीजिए निवनाथ जी ॥४॥

### प० छानतराय रचित पाश्वनाथस्तवत

नरेन्द्र पणा २ सुन्दर अधीन शतेन्द्र सुवर्दे नबे नाथ लीक ।  
 मुनीन्द्र गणी द्र नव जोड हाथ नमो देव देव सदा पाश्वनाथ ॥  
 गजे द्र शगेन्द्र गहरो तू छुडाव महा आग तें नाग तें तू बचाव ।  
 महावार त मुद्र म तू जिताव, महा राग त बध त तू छुडाव ॥  
 दुखी दुख हर्ता मुखी मुखव कर्ता, सदा मेवको री महानन्द भर्ता ।  
 हरे म र रासम भूत पिशाच महादाकिनी विघ्नके भय अवाच ॥  
 दरिद्रीन को द्रव्य के दान दाने अपुत्रीन कों तू भले पुत्र कीने ।  
 मन्दासकटा से निकार विधाता सब सपदा सब को दहि दाता ॥  
 महाचोरको बख को भय निवार महापीनके पुञ्ज तें तू उधार ।  
 महाक्रीरकी अग्नि को मेघधारा महालोभ शैलेयको मघा भारा ॥  
 महामोह अधेर को ज्ञानभान

महाब्रम कातार को हव प्रथान ।

किये नाग नागिन अधोलोक स्वामी

हरी मान तू दत्य को हो अकामी ॥

तुही कल्पट र तुही कामधेनु तु ही न्य चिन्तामणि नाग गर्भ ।

पन्नू नरक के दुःख त तू छुडावै मन्स्वन म मुक्ति म वसाव ॥

करे मोह को हैम पाषाण नामी,

रट नाथ सो क्या न हो मुक्तिगामी ।

कर सेव ताकी कर देव सेवा सुन बन सा ही लहे जान मेवा ॥  
 उप आप ताको नहीं पाप लाग घर ध्यान ताके सर्व दोष भाग ।  
 बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे तुम्हारी कृपात सरें वाज मरे ॥  
 गणधर इद्र न कर सक तुम बिनती भगवान् ।  
 ध्यान प्रीति हिहारि कें बीज आप ममान ॥

## सामायिक

सप्ताह के समस्त पदार्थों के साथ यहाँ तक कि अपने शरीर से भी  
 माह, ममता दूर करने के लिए जब किसी से द्वेष घृणा मिटाने के अर्थ  
 प्राय से जो मन के विचारों को आत्म की ओर समुद्ध किया जाना है  
 उसे सामायिक कहते हैं ।

आत्मा को राग द्वेष आदि विचार मत्ता से मुक्त करने के लिये सब  
 से अच्छा साधन यह आत्मध्यान या सामायिक ही है । इन कारण प्रति  
 दिन कुछ न कुछ समय तक सामायिक अवश्य करनी चाहिए ।

### सामायिक की विधि

जहाँ पर कोई पशु पक्षी स्त्रो-पुरुष बच्चे आदि अपने लम्बा व  
 अथ किसी चेष्टा से मन को विक्षेप विचलित करने का न हों वा  
 स्थान शांत हो कोलाहन तथा उपद्रव से रहित हो एव स्थान पर  
 सामायिक करनी चाहिये ।

सामायिक करने से पहले अपने वस्त्र सिं क बान आदि टुक टुक  
 लेने चाहिये जिससे सामायिक करत समय वायु से उड़कर या टूटकर  
 हुए के वस्तु का विचलित करने का कारण न बन सक ।

सबसे पहले पूव दिशा की ओर अथवा उत्तर दिशा का आरंभ कर  
 के सदा होकर नौ बार नमोकार मात्र पढ़ फिर पृथ्वी पर वहाँ बैठ कर

घाक देवे तन्नांतर उसी स्थान पर फिर ताडे होकर तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़े उसके बाद हाथ जोड़ कर तीस आवत (जुड़े हुए हाथों की बायीं ओर से गोल रूप में तीस बार पूरा घुमाना) और एक 'गिरोनति' (जुड़े हुए हाथों पर मन्त्र लगा कर नमस्कार) करे। इतना कर लेने पर ग्राहिने हाथ का ओर घूम जाना उधर भी तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़कर तान आवाए एक गिरोनति करे। फिर ग्राहिनी ओर घूमकर तीस बार णमोकार मन्त्र पढ़कर तीस आवत एव गिरोनति करे तन्नांतर फिर ग्राहिनी ओर घूम कर चौथी शिशा की ओर मुख करके तीन बार णमोकार मन्त्र पढ़े और तीन आवत एक गिरोनति करे। इतना कर लेने पर ग्राहिनी ओर घूमकर उसी पूव शिशा या उत्तर शिशा की ओर—द्विधर धाक या धी—मुख कर बैठ करके या खड़ा होकर सामायिक करे।

सामायिक करने के प्रारम्भ में यह नियम कर लेना चाहिए कि जब तक सामायिक समाप्त न हो जायगी तब तक चाहे जसा विघ्न या उपश्लेष आके भी अपने स्थान से नहीं हटूँ या न अपने विचारा में शिशा भूठ छोरी बान सवन या परिग्रह की भोजन मयता के भाव आने युगा सामायिक सम्बन्धा पाठ मन्त्र आदि उच्चारण के सिवाय अन्य कुछ न बोलूँगा और पद्मासन या लङ्गामसन में अडिग रहूँगा यानी शरीर में कोई वेष्टा नहीं कसेगा। ऐसा दृढ़ संकल्प करके सामायिक करनी चाहिये।

### सामायिक में क्या करे

सामायिक करते समय मन की बाहरी विचारा से हटा करके आत्मा की ओर लगाने के नियम अहं त सिद्ध परमेश का स्वरूप चिन्तन कर किमी भीतराग मूर्ति का विचार करे बारह भावनाओं में आत्मा के गुण स्वरूप को विचारने में मन को रोके कि मैं शुद्ध चतुर्षु निर्विकार हूँ यह शरीर तथा पुत्र मित्र स्त्री धन मकान आदि कोई शत्रु भा वस्तु मेरी नन्हीं है सत्तार के सभी पशुपद अपने अपने रूप में परिणत

हा रहे हैं। उनके उन परिणमनों का न ता मैं धाने अनुत्पन्न कर सकता हूँ और न मैं उन जमा नो गवता हूँ। इस कारण दूसरे पदाथ न मुझे कुछ हानि लाभ से गकने हैं और न मैं वास्तव में विगा का कुछ विगाड, सुधार कर सकता हूँ। अतः गसार म न मेरा कोई मित्र है न कोई धनु में अथवा मुम का भण्डार तथा पूण जाा पिण्ड हूँ। राग द्वय काम, क्रोध मोह, माया अहंकार ममकार त्रिभ लुण्णा मेरे शुद्ध भाव नहीं हैं, ये तो कर्मों के विचार से हो जाते हैं। मैं निरजन निर्विकार शुद्ध भविष्यन्त हूँ। कामा गनाप सत्य दौष ब्रह्मभय स्वाग भय गानि निर्भयता मरे गुण हैं जो अहंत मिद्ध परमेष्ठी म गुण हैं व हा मुक्त मे भी हैं। राग द्वय छोड़कर यदि मैं भी कुछ प्रयत्न करूँ तो पूर्ण गानी धीनराग बन सकता हूँ अजर अमर परमात्मा हो सकता हूँ अति।

ऐसा विचार करे विरक्ति जाने के लिये बारह भायगा पड़े द्विती मात्र का पाप करे। यानी—उस समय अगन मन का सांसारिक राग द्वय मोह ममता क विचारों म राज रहे।

यह सब कुन्द कर देने पर उमी स्थान पर गड़ा हो जावे धीन नो बार लमाकार मात्र पढ़ कर धीन से। इस तरह सांसारिक समाप्त करे।

### जपने क मन्त्र

लमोकार मन गत्र मन्त्रों म धारण है। यदि पूण लमोकार मन्त्र को जपना जान तो सभी विना सांसारिक दुःख मरुत से मम कोई मन्त्र नहीं।

गुन वा अगुन वाय करन क १०८ बार दिन १०१—

१ मन (विचार करना), २ धयन (ध्यान करना) (१) ३ वाय करना)



१ कृत (स्वयं करना) २ कारित (अप्यं स कराना) ३ अनु-  
मोक्त (किसी के किये हुए की सराहना करना)

१ सरभ (करन का सकल्प—इरादा करना) २ समारम्भ  
(काम करन के साधन जोड़ना), ३ आरम्भ (काम को प्रारम्भ या शुरू  
कर देना)।

ये सप्तकाय १ क्रोध वगैरि किसी का मारने पाटन के लिये किये  
जावें। अथवा २ अभिमान वगैरि किसी को अपमानित (बेइज्जत)  
करने के विचार में किये जावें। ३ या मायाशास्त्र के रूप में किसी का  
घोखा दान के इरादे में इनको क्रिया जाता है अथवा—४ लोभवश  
होकर जीव ऊपर गिरा दगा को अपनाकर काम करते हैं।

तदनुसार —

- १—मन कृत सरभ (मन में स्वयं किसी काम करने का इरादा  
किया हो)।
- २—मन कृत समारम्भ (मन में स्वयं करने के लिये सामग्री  
जोड़ने का विचार)
- ३—मन कृत आरम्भ (मन में किसी काम को स्वयं प्रारम्भ करने  
का विचार)।
- ४—मन कारित आरम्भ (मन में दूसरे के द्वारा काम करने का  
विचार)।
- ५—मन कारित समारम्भ (मन में दूसरे के द्वारा काम करने की  
साधन सामग्री का विचार)।
- ६—मन कारित आरम्भ (मन में अप्यं शर का काम प्रारम्भ करा देने  
की भावना)।
- ७—मन अनुमोक्त सरम्भ (मन में अन्य के किये गए काम पर

मराहना करने का इरादा करना) ।

८—मन अनुमोदना समासम्भ (मन से अथवा काम की मराहना करने का साधन जुगने की भावना) ।

९—मन अनुमोदना आरम्भ (मन में किसी काम की मराहना कर डालने का विचार) ।

१० वचनकृत सरम्भ, ११ वचन कृत समासम्भ, १२ वचन कृत आरम्भ १३ वचन कारित सरम्भ १४ वचन कारित समासम्भ १५ वचन कारित आरम्भ १६ वचन अनुमोदना सरम्भ १७ वचन अनुमोदना समासम्भ १८ वचन अनुमोदना आरम्भ ।

इमा प्रकार—

१९ शरीर कृत सरम्भ २० शरीर कृत समासम्भ २१ शरीर कृत आरम्भ २२ शरीर कारित सरम्भ २३ शरीर कारित समासम्भ २४ शरीर कारित आरम्भ २५ शरीर अनुमोदना सरम्भ २६ शरीर अनुमोदना समासम्भ और २७ शरीर अनुमोदना आरम्भ ।

२७ प्रकार काय करने के ढग क्रोध का कारण होते हैं ।

२७ प्रकार का काय मान के कारण होते हैं ।

२७ प्रकार में माया (द्वल कण) द्वारा किये जाते हैं ।

२७ प्रकार से ही सोभ द्वारा भी काय करने में आते हैं ।

अस कारण सब मिनकर काय करने का ढग १ ८ प्रकार के हैं । हा १०८ प्रकारों में किये गये पाप कायों में छु कारा पान का विचार में जाप की माला में १०८ दाने रखे गये हैं ।

## स्वाध्याय

ज्ञान तो प्रत्येक जीव में मौजूद है किन्तु वह पानावरण कम से छिपा हुआ है पूण विकसित नहीं है । उस छिपे हुए ज्ञान को विकसित

करण के लिये स्वाभाविक एक समूह सफल साधन है। हमारे पूज्य विद्वान् ऋषियां ने तथा अनेक ग्रन्थ विद्वानां ने जिनघाणी को शास्त्रीय भविष्यकर रच दिया है। उन शास्त्रों का पढ़ना-भुजना, मना करना, चर्चा करना तथा समाधान करना दूसरों को पढ़ाना, ममभाना आदि काय स्वाध्याय बनाना है।

### शास्त्रों के चार विभाग किये गये हैं

१—प्रथमानुयाग—जिन ग्रन्थों में सीधे-सीधे आदि श्रेष्ठ गलाका पुरुषों (२४ तीर्थकर १२ चक्रवर्ती ६ बलभ ६ नारायण ६ प्रति नारायण य ६३ गलाका यानी गणनीय पुरुष है), ऋषियों पुण्यगता मोक्षगामी महान् पुण्या का जीवन चरित्र जो वे ग्रन्थ प्रथमानुयाग के हैं। जस—आदि पुराण उत्तर पुराण पद्मपुराण, हरिवंश पुराण भाविनाथ चरित्र प्रह्लादचरित्र जीवचर आदि।

प्रथमानुयाग के ग्रन्थों में कथा के साथ-साथ यथा-अवसर धर्म नीति उपदेश चरित्र का कथन द्रव्य तत्त्व गुणस्थान लोकाकांग आदि का विवरण भी होता है। अतः कारण प्रथमानुयाग में जहाँ गुदर सरल मनारजक कथा होती है वहाँ नेत्र तीना अनुयागों के विषय भी आ जाते हैं।

२—करणानुयाग—करण का अर्थ गणित लोक, वार का विवरण भी दिया है—तन्नुसार जिन ग्रन्थों में त्रिकोण का काल परिचय का तथा गणित सूत्रों का विवरण हो वे करणानुयाग के ग्रन्थ हैं जसे तिसाव पण्यति त्रिकोणमात्र आदि।

करण शब्द का दूसरा अर्थ जीव के परिणाम दिया गया है—तन्नुसार जिन ग्रन्थों में जीवों के परिणामों का गुणस्थान आदि का विवरण हो वे भी करणानुयाग के ग्रन्थ हैं जस—गोमटमार सुविचार पण्यसासार आदि।

३— धरणानुयायन—जिनमें मृनिचर्पा तथा गृहस्य क आचार का वष नहा—जैसे मूलाचार आधारमा रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि ।

४ द्रव्यानुयाय—जिनमें या म छह द्र या पञ्च अस्तिकायो गुण पर्याया सात तत्वा ६ पण्थी आदि का तागनिक बधन होवे व द्रव्या नुयोग क ग्रथ हैं जये—नमयमार प्रवचनमार पचास्त्रिकाय द्रव्य सग्रह आदि ।

इनमें से अपनी अभी शक्ति व अनुसार यथा का स्वाध्याय करना चाहिये । पान चारा अनुयाया का प्राप्त करना चाहिये । जि हैं कुछ भी शास्त्राय पान न हो स्वाध्याय का प्रारम्भ ही कर रहे हो, उतका पद्य पुराण श्राव धर आदि मरत्त प्रथमानुयोग क ग्रथो का स्वाध्याय शुरू करना चाहिये । उसी के साथ आत्मानुभासन पद्मनदि पञ्चविंशतिका ज्ञानाणव सुभाषित रत्नमन्त्रोह स्वामिकाविक्रयानुयाया आदि कोई उप देशक ग्रथ भी रत्नना चाहिये । इन ग्रथा का स्वाध्याय कर नने पर हरि वश पुराण, रत्नकरण्ड श्रावकाचार (५० सप्तमुष्णजी की बड़ी टीका) मान्यमाय प्रशाक आदि ग्रथो का स्वाध्याय करना लाभायक है ।

माराग यह है कि क्या ज्ञान उपयेग तत्त्व पान न्ति पर न्ति वन्ता रत्न एत ग्र था का स्वाध्याय करत रत्नना चाहिये ।

### व्यक्तिक स्वाध्याय

स्वाध्याय यदि अनेक रूप से किया जावे तब तो स्वाध्याय वाले ग्रथ का हा समयवाचरण पढ़कर उत ग्रथ का स्वाध्याय प्रारम्भ करना चाहिये और साथ में एक मोड बुक रखनी चाहिये । शास्त्र की जो बात समझ में न आवे उमका ग्रथ का नाम और पद्य नम्बर सहित नोट बुक (पाकिट बुक) में लिख देना चाहिये जिगसे कि कभी अवसर मिलते ही किसी विनेय नानी विद्वान से उसको पूछ कर उसको समझ में न आई हुई बात का समझ लिया जावे ।

## शास्त्र सभा

प्रत्येक मन्दिर में प्रातः या रात्रि का कम से कम एक बार पारव सभा प्रवेश्य हानी चाहिये जिसमें अपने यहाँ का विशेष जानकार व्यक्ति शास्त्र पढ़ और सब स्त्री पुरुष उसका शांति के साथ सुनें । शास्त्र-सभा की परम्परा बहुत लाभदायक है अतः शास्त्र सभा की प्रणाली जहाँ न हो वहाँ पर अवश्य चालू कर देना चाहिये । स्त्रियाँ भी अनन्त शास्त्र सभा भी आवश्यकतानुसार जाती गद् वह भी लाभदायक है ।

### ॐकार पाठ

शास्त्र सभाम् शास्त्र पठनं च पहिल नीच लिखा ॐकारपाठ पढ़ना चाहिये ।

ॐकार विन्दुसयुक्तं नियमं ध्यायति यागिनः ।

कामद मोक्षदं च ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशतघनौघा प्रसन्नान्निभ्यवलभुनज्जमल्लक्षका ।

मुनिभिरपायितनीथा सरस्वती हरतु नो हुरिम् ॥२॥

अज्ञान निमिराधाना ज्ञानाञ्जनशब्दाख्या ।

चतुरमालितं च तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

परमगुरवे नमः परम्पराचार्यं श्रीगुरुभ्यां नमः । सकलकतुपविष्यत्क श्रयमा परिवष्यक पुष्यप्रकाशक पापप्राणाशक इदं शास्त्रं श्री (यहाँ पर जिस ग्रन्थ को पढ़ा जा रहा है उस ग्रन्थ का नाम कहना चाहिये) नाम धेयः । अस्य मूल ग्रन्थकर्तार श्रीमन्वज्र देवा तदुत्तदेवप्रथकर्तार श्रीमन्वज्र देवा । तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्री (यहाँ पर ग्रन्थ बनाने वाला आचार्य का नाम कहना चाहिये यदि ग्रन्थ बनाने वाला कोई भट्टाकर या या गुरुस्थ विद्वान् है तो आचार्य श्री कस्यां पर भट्टाकर श्री कहकर या पण्डित श्री कहकर उसका नाम बोलना चाहिये) विरचितः । ध्योतार सावधानयता शण्वन्तु ।



अष्टमी और चतुर्थी ता पव दिन है ही इसके सिवाय [अष्टाहिका  
 कार्तिक मास और आषाढ मास के अन्तिम आठ दिन, दशम्यण  
 [भाद्रपद शुक्ल ५ से १४ तक के १० दिन] षोडशकारण [भाद्रपद  
 माघ तथा चत्र वृत्ती १ से ३० दिन] 'रत्नक्षय' [भाद्रा, माघ, चत्र शुक्ली  
 १३ से १७ तक तीन दिन] भाषावली [कार्तिक वदी अमावस] वीर  
 धामन जयंती [मार्गण वृत्ती प्रतिपदा] 'रक्षाध धम [घावण शुक्ली १५  
 और श्रुतपक्षमा [चैत्र शुक्ली ५] अष्टम जयंती [माघ वदी १४] व  
 महावीर जयंती [चत्र शुक्ली १३] ये जनसमाज के प्रसिद्ध पर्व दिन हैं।

### दश लक्षण धम

स्वप्न म जब तक चानी ताबा आदि अन्त धानुमा का मल बना  
 रहता है तब तक उम भिलावटी स्वप्न पर न तो मुन्दर चमन आती है  
 और न उसका मूल्य बढ़ता है। उमी प्रकार जब तक आत्मा के साथ  
 पुद्गल द्रव्य का मिश्रण बना रहता है तब तक आत्मा की स्वच्छ आभा  
 प्रकट नहीं होने पाती और न उसकी अनन्त शक्तिमा पूण विकसित हो  
 पाती है। कर्मों के सयोग से महान् ऐश्वर्यवाली भी आत्मा दीनहीन,  
 दुखी अगानी पतित बना रहता है।

आत्मा के दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए दश उपाय  
 बतलाये गये हैं जिनकी शास्त्रीय भाषा से 'दशलक्षणधम' कहते हैं।  
 प्रत्येक आत्मप्रभू की दशाधम की सचेष्टता सम्भवेना तथा उमका  
 यथामर्याद आचरण करना आवश्यक है। अतः प्रथम संक्षेप से उन  
 दस धमों का विवरण यहाँ देते हैं —

- १ क्षमा—सहनशील गति का नाम 'क्षमा' है। क्रोध पर विजय  
 प्राप्त करना ही क्षमा है।
- २ मन्दब—आत्मा का कामत परिणमन मादक' है। अभिमान  
 पर विजय प्राप्त करने से मादक गुण प्रकट होता है।

- ३ आज्ञा—मन वचन-काय की क्रिया की एकरूपता को आज्ञा कहते हैं। छात्र अपराध न करने से यह गुण प्राप्त होता है।
- ४ सत्य—भूठ न बोलना ही सत्य है। जिसमें किसी की आत्मा दुखित हो ऐसा सत्य भा नही बहना चाहिये।
- ५ शौच—हृदय की पवित्रता का नाम शौच धर्म है। लोभ न करना ही शौच धर्म कहलाता है।
- ६ सयम—इन्द्रियां व विषयां पर विजय प्राप्त करना ही सयम है।
- ७ तप—अज्ञान का रोकना ही तप है।
- ८ त्याग—स्व अनुग्रह (सर्वत्र निजरा) तथा अय प्राणी के सकट दूर करने के लिए जा द्रव्य का दान किया जाना है वह त्याग है।
- ९ आर्किचम्र—आत्मा के निज गुणां के सिवाय-जगत् के सभी पदार्थों में राग भाव न रखना ही आर्किचम्र है।
- १० ब्रह्मचर्य—कामवासना पर विजय प्राप्त करना ही ब्रह्मचर्य है।

### व्रत नियम

मनुष्य को अपना जीवन शांत सुखी एवं सात्विक धार्मिक बनाने के लिये न तो अपने शरीर का दास (गुलाम) बनना चाहिये न इन्द्रियों का दास बनना चाहिये और न विषय भोगों का शीटा बनना चाहिये। इसके लिये उत्तरे नित्य विजयी बनकर सदासमय सयामम्भव व्रत नियम अवश्य ग्रहण करने चाहिये।

स्वस्थान इन्द्रिय विनय—अपनी पत्नी के साथ ही गुणी सत्चारित्र्य विद्वान् सन्तान उत्पन्न करने की भावना से काम सेवन करना चाहिये। गर्भाधान हो जाने के पश्चात् ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये। रजस्वला के दिनों में ब्रह्मचर्य रक्षना आवश्यक है। शरणाग्नि रोगों की निवृत्ति के समय काम सेवन का त्याग होना चाहिये। अष्टमी चतुर्दशी



दशवर्षाण जट्टात्िका आन् विगव धर्माचरण के न्तिों म ब्रह्मचर्य रगना चाहिये । ५० वष की आयु हो जाने पर ब्रह्मचय व्रत से सना चाहिये । किसी भी बन्ने-बच्ची को अवोध समझ कर उसके सामने कामक्रीडा नहीं करनी चाहिये ।

द्वय प्रकार के ब्रह्मचय पालन करने से धर्मआचरण होता है गर्मी (उपश) राग नहीं होता (जो कि रजस्वला के समय काम सेवन से प्राय हाता है) । राजपश्या (टी बी) रोग नहीं होना तथा घर में बान-बच्चा से दुराचार की भावना नहीं आती और पति-पत्नी का शरीर स्वस्थ बलवान रहता है ।

पुरुष के वीय की प्रत्येक बूंद में तथा वीय समान स्त्री की धातु की प्रत्येक बूंद में जीवन के क्षण और शरीर की पुष्टता विद्यमान है अत अपने जीवन को दीर्घजीवी स्वस्थ और बलवान बनाने के लिये अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य का आचरण करना चाहिये ।

रसना हृदिय की विजय—असम्य परदुःखदायक अपमानकारक ममभेदी विश्वासघाती भोषा देने वाले अहितकर बचन न कहना मशुद्ध होटली भाजन न करना चाट पकोड़ी मिश्र तेज मसाले की वस्तुयें न खाना, मिठाई खाने का अभ्यास न डालना शुद्ध मांसिक सान्न भोजन करना सिद्धांत विरुद्ध न बोलना वक्ति सूचक उपदेश प्रदस्तात्र गीत गुरील स्वर स गाना, हित मित प्रिय शिष्ट सत्य बचन बोलना रसना हृदिय की विजय है ।

घ्राणहृदिय की विजय—दूध फुलेल कपूर नसवार आदि सूघने की प्रवृत्ति न डालना घ्राणहृदिय की विजय है ।

नेत्र हृदिय की विजय—वैश्यावृत्य तथा कामोत्तेजक चोरी डकना आन् दुराचार पोषक फिल्मों का देखने का त्याग करना भगवान्

की प्रतिमा का निरूपितयम से दहन करना मुक दहन करना बड़े प्रभावशाली दस्य देवता यह क्षेत्र इन्द्र की विजय है।

कर्ण इन्द्र की विजय—गंधे कामोत्तम, कषायवर्द्धन विना अन्नक, धानों का माना का न मुनना प्रनिश्चिन्नासास्त्र मुनना विनाप्र उरुणा मुनना अण इन्द्र की विजय है।

कषायवर्द्धक स्व-भर अहितकारी विचार न करना विषय बात नाशों क उत्तम प्रयत्न न करना विभी का अगुम विचलन न करना किसी की उत्तमि देख ईर्ष्या जलन न करना विन्द हित की भावना रखना मर्यादाओं का स्वाध्याय मनन करना प्रनिश्चिन्ना सामाधिक करना मन की विजय है।

## सदाचार

मनुष्य जीवन की श्रष्टना सन्चार क कारण है। पशुना म माता सहित पुत्री आदि का विचार नहीं होना ब सन्ना हिंसा, काम सवन आदि पापकायों म विप्ल रहने हैं इसी कारण पशुओं को नीच माना जाता है। अतः मनुष्य को अपना जीवन श्रष्ट बनाने के लिये सन्चारित्त आचरण करना आह्विय सन्चारित्त के बिना मनुष्य भव अर्थ है।

हिंसा (अथ जीव का मराना पारना) असत्य (झूठ बोलना विश्वासान करना धोखा देना बेईमानी करना), धारा करना कुपित्त (काम सवन करना) और परिग्रह (अध्याय मे धन सचय करना) य ५ पाप हैं। इनका त्याग करना सन्चार है।

गुरुणा आत्म को छोड़ कर साधु (मुनि) बनने वाले महारमा महाजन क रूप म इन पाँचा पापों को पूण रूप से त्याग करते हैं।

दशमपण अष्टाहिका आदि विविध धर्माचरण के निती में ब्रह्मचर्य रखना चाहिये । ५० वर्ष की आयु हा जाने पर ब्रह्मचर्य इन से तना चाहिये । किसी भी बच्चे-बच्ची का अवोध समझ कर उसके सामने कामक्रीडा नगी करनी चाहिये ।

इस प्रकार क ब्रह्मचर्य पालन करने से धर्मआचरण होता है गर्मी (उपदश) रोग नहीं होता (जो कि रजस्वला के समय काम सेवन से प्राय होता है) । राजयन्मा (टी बी) रोग नही होता तथा घर में बाल बच्चों में दुराचार की भावना नही आती और पति पत्नी का शरीर स्वस्थ बलवान रहता है ।

पुरुष के वीर्य की प्रत्येक बूंद में तथा वीर्य समान स्त्री की घातु की प्रत्येक बूंद में जीवन के क्षण और शरीर की पुष्टता विद्यमान है अन अपने जीवन को दीर्घजीवी स्वस्थ और बलवान बनाने के लिये अधिक् से अधिक ब्रह्मचर्य का आचरण करना चाहिये ।

रसना इन्द्रिय की विजय—असभ्य, परदुष्प्रायक अपमानकारक ममभेदी विश्वासघाती घोखा देने वाले अहितकर बचन न कहना अशुद्ध होश्ली भाजन न करना चाट पकोड़ी मिच तेज मसाले की वस्तुयें न खाना मिठाई खाने का अभ्यास न डालना शुद्ध सात्विक सादा भोजन करना सिद्धांत विरुद्ध न बालना बक्ति सूचक उपदेश प्रद स्तोत्र गीत सुरीले स्वर से गाना हित मित प्रिय शिष्ट सत्य बचन बोलना रसना इन्द्रिय की विजय है ।

घ्राणइन्द्रिय की विजय—न फुनेल कपूर नसवार आदि सूघने की प्रवृत्ति न खानना घ्राणइन्द्रिय की विजय है ।

नेत्र इन्द्रिय की विजय—वेश्यावृत्त्य तथा कामोत्तेजक चोरी उकती आदि दुराचार पोषक फिल्मों के देखने का त्याग करना भगवान्

की प्रतिमा का निरूपणसम स दान करना गुरु दान करना अथे प्रभावशाली हृद्य देवता यह नव इन्द्रिय की विजय है ।

कर्ण इन्द्रिय का विजय—गन्ध, कामात्तत्रक कपायवद्धक विना जनक बानों का मोता का न मुनता प्रतिनिधि पास्त्र मुनता विनाप्र वप्रेण मुनता कण इन्द्रिय की विजय है ।

कपायवद्धक स्व पर अहितकारा विचार न करना विषय बात नात्रा क उत्तमक प्रथ न पढ़ना विनी का अगुम चिन्तन न करना किमी की उन्नति देव ईर्ष्या जनन न करना विषय हित की भावना रक्ता सदासत्रा का स्वाध्याय मनन करना प्रतिनिधि मामादित करना मन की विजय है ।

## सदाचार

मनुष्य जीवन की श्रष्टता सदाचार क कारण है । पगुआ म माता बहिन पुत्री वात्ति का विवर नर्त्ती होता वे सदा हिंसा काम सेवन आदि पापकार्यों में लिप्त रहते हैं इसी कारण पगुआ को नीच माना जाता है । अतः मनुष्य को अपना जीवन श्रष्ट बनाने के लिये सदाचारिक आचरण करना चाहिये सदाचारिक क रिता मनुष्य भव व्यर्थ है ।

हिंसा (अप्य जीव को सताना, मारना) असत्य (भूठ बोलना विश्वासान करना धोखा देना वेईमानी करना) चोरी करना कुशील (काम सेवन करना) और परिग्रह (अप्याय म धन सचय करना) ये ५ पाप हैं । इनका त्याग करना सदाचार है ।

गृहस्था आश्रम को छोड़ कर साधु (मुनि) बनने वाले महात्मा महाशत क रूप म इन पाँचो पापों को पूण रूप से त्याग करते हैं ।

सभी जीव जन्तुआ (जस तथा स्फारर जीवा) की हिंसा का परिहारा करते हैं। रचमात्र भी झूठ नही बोलने किमी भी तरह की विनी की वस्तु बिना पूछे नही जेते रत्री मात्र स विषय मवन क रगगी होत हैं और अपने पास एव कीडी भी नही रखने पूरी तरह नान हाने है अत व अहिंसा सत्य अचीव अन्नधय और अरिषह महात्रन का आचरण करते है ।

इसके सिवाय ४ गमिति, ५ द्दिश्य दगन ६ आवश्यक दनिग कार्य तथा ७ गज गुण यागी २३ प्रकार का अन्य सगचार आचरण करते है, जिनका विवरण पीछे इस पुस्तक मे दिया है । इस तरह मुनि धारित्र मे २८ मूल गुणों का आचरण होता है ।

किंतु गृहस्थाश्रम म रहन वाना मनुष्य पांच पासों का पूरी तरह से त्याग नहीं कर सकता । तनुमार उनका सगचार ५ अणुवन रूप होता है ।

हिंसा न चार भेद हैं १—सकृष्ण हिंसा [जान बूझकर किसी की हत्या करना जैसे गिरार खेतना आदि] २—विरोधी हिंसा [गधु से अपनी अपने परिवार की हिंसा दीन निर्मल की मन्त्रि आदि धर्मापतन की रक्षा करते हुए शत्रु को मारना] उद्योगी हिंसा [व्यापार मती कारखान आदि चलाने म जो धुद्र जाव जन्तुआ—चीटी आदि प्रसा की हिंसा अनचाह भी हुआ करती है] और वारम्भा हिंसा—[रसाई बनाने आदि घर क कापों म हानेवाली छोट जीव जन्तुओं की हिंसा] । इन चार हिंसाओं म से गृहस्थ-रत्री पुरुष केवल सखली हिंसा का ही त्याग कर सकते है अन्य तीन प्रकार की हिंसा को गी छोड सकते । अन्यत्र सखली प्रस जीवा की हिंसा का त्याग रूप अहिंसा अणुवत गृहस्थ का होता है ।

इसी तरह गृहस्थ घर व्यापार जादि क व्यवहार कापों मे पुण

असत्य बोझों का भी त्याग नहीं कर सकता। अब राज-द्वाराद्वारा  
भाषण के त्याग रूप गृहस्थ का सत्य अणुव्रत जाना है।

जिन जल मिट्टी घास वगैरे [पत्त पत्र, पूत्र] आदि वस्तुओं पर  
किन्हीं का स्वामित्व [मानिकी] न हो उनका ही गृहस्थ बिना पूज-माद्य  
ले सता है किन्तु उनके सिवाय अन्य कोई किन्हीं दूसरे व्यक्ति की वस्तु  
बिना पूज नहीं लेता यह उसका अग्रोप्ये अणुव्रत होता है।

अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय अन्य समस्त स्त्रियों के साथ काम  
सेवन नहीं करना यह गृहस्थ पुरुष का ब्रह्मचर्ये अणुव्रत है तथा वह जान  
पति के सिवाय अन्य समस्त पुरुषों से विषय-भवन का त्याग करना  
स्त्रिया का ब्रह्मचय व्रत है।

गृहस्थाश्रम चलाने के लिये 'याय नीति म व्यापार उपाय शानी  
नौकरी आदि करके धन उपार्जन करना और अपनी आवश्यकतानुसार  
सीमित धन संपत्ति रखना गृहस्थ का परिगृह परिमाण वस्तु है।

यह पाँच अणुव्रत गृहस्थ का मूल सन्तोष है। यहाँ प्रायः  
स्त्री पुरुष को आचरण करना चाहिये। यद्यपि गृहस्थ पुरुष के आद्य  
भी व्रत नियम हैं उनका आचरण की ११ श्रितियों [श्रितियों] पर  
यहाँ संक्षेप में बचन अणुव्रतों का ही उल्लेख किया है।

## अभिवन्दन करने की पद्धति

[१] श्रावक मुनि के लिए नमोस्तु इह।

[२] बन्धु म मुनि उत्तम त्रिवण-श्रावक इ-श्रित-श्रद्धि माध्या  
[सामान्य] पुरुषों को 'धमनाम और श्रुतों के लिये नमोस्तु' इति।

[३] श्रद्धाधारी को श्रावक वन्दना इति।

[४] ब्रह्मचारी बन्त म श्रावक की 'पुण्यवृद्धि अथवा' 'शनविशुद्धि' कहे ।

[५] श्रावक आशिका को वदामि कहें ।

[६] आशिका भी श्रावक को धमवृद्धि और सामान्य पुरुषा को धमलाभ कह ।

[७] प्रता श्रावक अर्थात् सहस्रमी आपस म 'इच्छाकार' करें ।

[८] शप जन मात्र आपस म जयजिनेन्द्र कहे ।

[९] इसक सिवाय और पुरुषा के प्रति उनकी योग्यनानुसार मया योग्य विनय करना चाहिए ।

[१०] गृहस्थ अपन लौकिक व्यवहार म बडा को नमस्कार करें ।

[११] विद्या तप और गुणो म श्रेष्ठ पुरुष अवस्था म कम होते हुए भी श्रेष्ठ [बडा] माना जाता है ।

[१२] सूत्र पाठु म शपता ग्यारहवी प्रतिमात्राने ३ श्रेष्ठ श्रावको को इच्छाकार करना लिखा है अर्थात् म आप सरोला होने की इच्छा करता ह ।

[१३] ग्यारहवी प्रतिमात्राल आपस म 'इच्छामि' कह ।

यहाँ पर प्रती स्त्री पुरुष को श्रावक और शप सबको सामान्य गृहस्थ समझना चाहिए ।

## दुर्व्यसन

मनुष्य को जो बुरी आत्में पड जाती हैं वे दुर्व्यसन है । वे सात प्रकार के हैं १—शुभा खेलना २—भास खाना ३—मदिरापान, ४—वेश्यासवन करना ५—शिकार खेलना ६—चोरी करना और ७—पर स्त्री सेवन करना ।

बिना परिश्रम व घनिक बना जाने की घुन में मनुष्य धनक प्र-  
का जुआ खेपत हैं उम जुआ म जग कभी जीन जाना सरत है उसी  
तरह उममें हार जाना भी सरत है । इस कारण जुआ बटा कतरनाक  
खल है । योगी तब का हार जान काय पाठव तथा नत राजा जुआ  
खलन व कारण ही नष्ट भष्ट हो गय । जुआ का आया हुआ धन बस्या  
मेहन, मागभक्षण मन्त्रिपान आदि कुशलों म जुआरिया की संगति  
में लगा करना है इस कारण जुए म जीनता और नारना जाना ही हानि  
कारक है ।

मास प्रमजीवा की दिना म हाना है तथा गील मूरे पक कच्य  
मभी तरह व मास म प्रति समय अमरुज जीन उत्पन्न होने रहन हैं ।  
अत मास खाना अयोग्य है और पाकरप है ।

मन्त्रि [धराव] पान स वृद्धि नष्ट भष्ट हा जाती है तथा धन का  
अभ्रम्य होता है और ग्वास्थ्य खराब हाना है इस कारण धराव पीना  
सब तरह म हानिकारक है ।

प्राचीन कथा है कि बस्या सेवन से कराडपता चाण्डस सेठ दीन  
दरिद्र बन गया था साधारण मनुष्य को तो बस्या व्यसन से दीन दरिद्र  
बनने में कथा गेर लग मरती है । बस्याआ को गर्मी [आनक्ति] आदि  
अनेक योग रोग प्राय हाते हैं । आ कि बस्या व्यसन करने वालों का  
भी अवय हो जान हैं । अत बस्या व्यसन तन मन धन तीना को नष्ट  
करन वाला है ।

मनुष्य जब अपने शरीर की रक्षा चाहता है अपना जीवन निरापद  
शान्त चाहता है तो उसको अय जीवा के साथ भी बसा ही व्यवहार  
करना चाहिय ब दूक जाल धनुष बाण आदि स विडिया कबुनर  
हिरण, सिंह, मयूनी आदि का गिकार खेतना बडा भारी निन्दना का  
महान पाप है ।



गृहस्थाश्रम का संचालन धन सम्पत्ति से हुआ करता है इनो के लिये मनुष्य चार पश्चिम वरक धन उपाजन करता है। और प्रत्येक मनुष्य को अपनी सम्पत्ति के साथ अन्न प्राणा के समान प्रेम होना है। इस कारण यदि किसी मनुष्य की चारी हुई जाती है तो उसको अन्न प्राण निश्चय जाने के समान दुःख शाना है। अतः चोरी करना महान् पाप है।

एक मनुष्य का इच्छा शक्ती है कि मेरी पत्नी के बिना पुत्री माता की कोई अन्य व्यक्ति कामवागना की दृष्टि में न ल्ये व उतरा गीत भग वरे। तो उम मनुष्य का भी यत्न है कि वह भी अपनी पत्नी के सिवाय अन्य स्त्रियां मे व्यभिचार करने का त्याग करे। जो मनुष्य पर स्त्री मवत करत है उरु घर में समाचार नहीं रहन पाना दुःखार फल जाना है। कारण का मरनाग इसी कारण हुआ।

इस तरह में सानों व्यसन मनुष्य का यम धन गरीर, समाचार नष्ट भ्रष्ट करने वाले हैं अतः प्रत्येक स्त्री-पुरुष को इन व्यसना के त्याग करने की कभी प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

## जैनों की मूल मान्यताएँ

[१] यह जोक अनात्ति अनन्त तथा अदृशिम है। चतन अचेतन एक द्रव्या से मरा हुआ है। भ्रान्तागत जीव भिन्न भिन्न हैं। अनन्तानन्त परमाणु जड हैं।

[२] जोक के साथ ही द्रव्य स्वभाव में नित्य हैं परन्तु अवस्था के बदलने की अपेक्षा अनित्य हैं।

[३] ससारी जीव प्रवाह की अपेक्षा अनात्ति में जड पाप-पुण्यमय जर्मों के शरीर में योगमें पाये हुए अशुद्ध हैं।

[४] हर एक ससारी जीव स्वतंत्रता से अपने अणुद भावां द्वारा कम बांधता है और वही अपने गुद भावां से कर्मों का माग कर मुक्त हो सकता है ।

[५] जब जिया हुआ भाजन पान स्थूल शरीर में स्वयं रसकर शक्ति शीघ्र बनकर अपने पल को जिया करता है तेरे ही पापपुण्यमय सुदम शरीर स्वयं पाप पुण्य पान प्रकट करके आत्मा में प्रोधाति व गुण गुण भसवाया करता है । कोई परमात्मा किसी को दुख मुक्त नहीं देता ।

[६] मुक्त जीव या परमात्मा अनन्त हैं । उन सबकी सत्ता भिन्न भिन्न है कोई किसी में मिलता नहीं । सब ही नित्य स्वात्मानन्द का भोग किया करते हैं तथा फिर कभी संसार अवस्था में नहीं आते ।

[७] माधन शृंख्य या साधुजन मुक्ति प्राप्ति परमात्माओं की भक्ति व आराधना अपने परिणामों की शुद्धि के लिए करते हैं । उनको प्रसन्न करके उनसे पान पाने के निग नहीं ।

[८] मुक्ति का साधन माधन अपने ही आत्मा का परमात्मा के समान गुद गुण वाता जानकर—उद्वान् करके—धीरे सब प्रकार का राग द्वेष मोह त्याग करके उसी का ध्यान करना है राग द्वेष माहमे कम घटते हैं । एक विपरीत वीतराग भावमयी आत्मसमाधि से कम सब [नाग ही] जाते हैं ।

[९] अत्मा परमधम है । साधु इसको पूर्णता से पानते हैं । शृंख्य यथाशक्ति अपने-अपने पल के अनुसार पानते हैं । धम के नाग पर मागात्मा शिखर शीक आति व्यथ पायों के निग जीवा को हवा नहीं करते हैं ।

[१०] भाजन गुद साजा [माग मत्तिरा, मधु रत्ति] व पानो छाता हुआ पना उचित है ।

गृहस्थाश्रम का संचालन धन सम्पत्ति से हुआ करता है इसी कारण मनुष्य धार परिश्रम करने धन उपाजन करता है। और प्रत्येक मनुष्य का अपनी सम्पत्ति के साथ अपने प्राणों के समान प्रेम होता है। इस कारण यदि किसी मनुष्य की चारी हो जाती है तो उसकी अपने प्राण निरन्तर जाने के समान दुःख होना है। अतः चोरी करना महान् पाप है।

प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्णा होती है कि मेरी पत्नी बर्तन पुत्री, माता का कोई अन्य व्यक्ति कामपासता की दृष्टि से न लक्ष्णा उनका पील भग करे। तो उस मनुष्य का भी कर्तव्य है कि वह भी अपनी पत्नी के सिवाय अन्य स्त्रियाँ से अभिचार करने का त्याग करे। जो मनुष्य पर स्त्री सेवन करने है उनका घर में सत्संचार नहीं रहने पाता दुःसंचार फल जाता है। शवण का मन्त्रांग इसी कारण हुआ।

इस तरह से मातो व्यसन मनुष्य का धन शरीर सत्संचार नष्ट भ्रष्ट करने वाला है अतः प्रत्येक स्त्री पुरुष को इन व्यसनो के त्याग करने की कधी प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

## जैनों की मूल मान्यताएँ

[१] यह लोक अनादि अनन्त तथा अदृशिम है। चेतन अचेतन अज्ञ द्रव्या से भरा हुआ है। अनन्तानन्त जीव भिन्न भिन्न हैं। अनन्तानन्त परमाणु जड़ हैं।

[२] लोक के सब ही द्रव्य स्वभाव से नित्य हैं परन्तु अद्रव्या के बदलने की अपेक्षा अनित्य हैं।

[३] सत्सारी जीव प्रवाह की अपेक्षा अनादि मन्त्र पाप पुण्यमय कर्मों के शरीर में योगसंघात हुए अणुद हैं।

[४] हर एक समारी जीव स्वयम्भवा से भरा अगुद्ध भावा द्वारा कम दापना है और वही अरुन गुद्ध भावा से कर्मों का नाश कर मुक्त हो सकता है ।

[५] जल किया हुआ भाजन पान स्वयं शरीर में स्वयं रमकर धिर, शीघ्र बनकर अरुन पत्र को निया करता है ऐसे ही पापपुष्पमय मूल्य शरीर स्वयं पाप गुण्ड पत्र प्रकट करके आरमा में प्राप्ति व गुण गुण फलनामा करता है । कोई परमात्मा किसी को दुष्ट गुण नहीं देता ।

[६] मुक्त जीव या परमात्मा अनन्त है । उन सबकी मत्ता भिन्न भिन्न है कोई किसी में भिन्नता नहीं । सब हा नित्य स्वात्मानन्द का भोग किया करते हैं तथा फिर कभी तसारा अवस्था में नहीं आते ।

[७] साधन शृद्धय या साधुजन मुक्ति प्राप्ति परमात्माओं की भक्ति व आराधना अपन परिणामा की गुद्धि के लिए करत है । उनको प्रसाद करते उनसे पत्र पाने के लिए गती ।

[८] मुक्ति का साधन साधन अरुन ही आरमा का परमात्मा के समान गुद्ध गुणवाना जानकर—ब्रह्मान् करके—और सब प्रकार का राग द्वेष मोह स्वयं करके उछी का ध्यान करता है राग द्वेष, मोह म कम बघते हैं । इसक विपरीत बीतराग भावमयी आरगममाधि में कम सड़ [नाश हो] जाते हैं ।

[९] अग्नि परमधम है । साधु इसका पूर्णता से पावते हैं । शृद्धय यथागत अपने-अपन पत्र के अनुसार पावन है । पत्र के नाम पर सांसाहार शिवार शीघ्र आदि धर्म कर्मों के लिए जीवा की हत्या नहीं करत है ।

[१०] भाजन गुद्ध ताजा, [मोम मदिरा, मधु रसि] व पानो श्राव हुआ तना उचित है ।

[११] जोच मान माया सोम यह चार आत्मा के शत्रु हैं इसलिए इनको दूर करना चाहिये ।

[१२] साधु व नित्य छह कर्म ये हैं—भामासिक या घमान प्रति क्रमण [पिछन शोषा की जिम्मा] प्रत्याख्यान [आगाभी के लिए शोष त्याग की भावना] स्तुति करना, कार्यात्मग [शरीर की ममता का त्यागना] ।

[१३] गृहस्थो के नित्य छह कर्म ये हैं—शिव पूजा गुरु भक्ति साम्प्र पठन मद्यम तप और दान ।

[१४] साधु जन्म लेते हैं यह परिग्रह व आरम्भ नहीं रखते । अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रह त्याग इन पाँच महाव्रता को पूरा रूप से पातते हैं ।

[१५] गृहस्था के आठ मूल हैं—मरिचा माम मधु वा त्याग तथा एक दान यथाशक्ति अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य व परिग्रह प्रमाण इन पाँच अणुवर्तों का पालना ।

## सूतक प्रकरण

सूतक में देवगुरु शास्त्र का पूजन स्वयंसे, मरिच के उस्त्र पात्र का स्नान तथा पात्रदान वर्जित है । सूतक का र पूरा होने पर प्रथम नित्य पूजन प्रभाव तथा वासनात करके पवित्र होंगे । सूतक का विधान इस प्रकार है —

[१] वृद्धि वर्षात् जन्म का सूतक [गुआ] १० दिन का माना जाता है ।

[२] स्त्री का गर्भ जितने मास का पतन हो उतने दिन का सूतक



घृत्यु की मुख्यता में तीन दिन का कहा है। प्रसूति का एक ही दिन का है।

[१३] जन्मे पीछे भस्म का दुध १५ दिन तक गाय का १० दिन तक और बकरी का ८ दिन तक अगुद्ध होता है पञ्चात् योग्य है।

## श्रावक-प्रतिक्रमण

मुनिचर्या का एक आवश्यक अंग प्रतिक्रमण है। अपने रात दिन की चर्या में प्रमाण बस जो दोष हो जाते हैं। उन दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण करना है। प्रतिक्रमण द्वारा मुनिजन अपने चारित्र्य की निम्न विया करते हैं।

गृहस्थ भी उसी प्रतिक्रमण का अनुरूप सामायिक करते समय अपने दोषों की आलोचना करके अपने चारित्र्य की शुद्धि कर सकते हैं। अथवा जिनेंद्र भगवान् के सामने सड़े हाकर या उर कर आलोचना पाठ पढ़ते हुए अपने मन की शुद्धि कर सकते हैं।

प्रत्येक स्त्री पुण्य प्रतिष्ठा सामायिक करते समय अथवा भगवान् के सामने सड़े हाकर या बठकर आलोचना पाठ पढ़ते हुए अपने मन की शुद्धि कर सकते हैं।


प्रत्येक स्त्री-पुरुष का प्रतिष्ठा सामायिक करते समय अथवा भगवान् के सामने अच्छे भीम स्वर से आलोचना पाठ अवश्य पढ़ना चाहिए। जिससे प्रमाण अनित दोषों की शुद्धि होती रहे।

## आलोचना पाठ

दाहा—बन्ने पाषा परमगुण जीवागा जितराज।

करु शुद्ध आलोचना शुद्धि करन के काज ॥१॥

## सभी छः चौदह मात्रा

मुनिये जिन अरुण इमारी । हृम शय विष अति भारी ॥ चिरको मय  
 निरुति काज । सुम गरम लक्षो चिराराम ॥२॥ एक भे त चउ ऋणी वा ।  
 मनरति त गहिन क जाया । जिनही नाँ, कदना पारा । निरुण हई धान  
 विचारी ॥३॥ सगभ्र गमाभ्र अरभ्र मय बचनन वान प्रारभ । श्रुत  
 कारिन मोहन कक नापाणि चतुष्टय धरिष ॥ एन भाठ जुदमि न तउ  
 अष वीन परीरुनत निनकी कहु पाउा कहानी सुम जानत कवय—  
 ऋणा ॥४॥ विपरीत एकांत विनयक । रागय अजात कुनयक । वग  
 हार घार अष वान वान नाह जाय कगीने ॥६॥ कुगुन मरा कीरी  
 कनत अस्पाकरि भीनी । वाविधि विभ्यातव कदाया कहुगनि मयि शय  
 टपाया ॥७॥ हिंसा गुनि भट जु चाग परप्रनिनामा हं जागो । आरभ  
 परिप्रह भानो पनपाय जु या विधि काना ॥८॥ मपरम रगना घाननका  
 पगु वान विषय मयन का । वटु करे विद मनमानो कहु वाय अपाय  
 न जानी ॥९॥ पल पव उबर गाये मधु माग मद्य निगमाये । नही  
 अष्टमून-गुणधारा विषयनमय दुसरायो ॥१०॥ टुंराग अभय निनगाय  
 सा भी निगिनि भुजाय । कहु भेनाभ्र नापाया ऋणा-त्या करि उर  
 भराया ॥११॥ अनतापु जु बधी जाना प्रत्याप्यान अत्र-वाच्याना ।  
 सा-वचन चौकडी गुनिय मय नं जु पांग मुनिय ॥१२॥ परिहात  
 अरति रति शाग । मन गतानि निवण मजाय ॥ पनबाग जु नं भय  
 हम । मन पः पाप विषे हम ॥१३॥ निरावण शयन कराई गुण  
 मधिपोष लगार् । फिर जागि विषय वन घाया । नाना विष विषयन  
 खायो ॥१४॥ विषेऽर निहार विहारा इमम नही अत विचाराग ।  
 बिन दना घरा उठाइ जिन गोपी वस्तु जु रार् ॥१५॥ तर ही परमा  
 मनाया बटु विधि विजाय उपजाया । कहु मुधि बुधि   
 मिरजाननि द्याय गयी है ॥१६॥ मरगा तुम ि



मृत्यु की मुख्यता में तीन दिन का कहा है। प्रसन्नता एक ही दिन का है।

[१३] जने पाँचों भक्त का दुःख १५ दिन तक गाय का १० दिन तक और बरसी का ८ दिन तक अगुद्ध होता है परचात योग्य है।

## श्रावक-प्रतिक्रमण

मुनिचर्या का एक आवश्यक अंग प्रतिक्रमण है। अपने रात दिन की चर्या में प्रमाद धन जो दोष पा जाते हैं। उन दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण करना है। प्रतिक्रमण द्वारा मुनिजन अपने चारित्र्य को निमत विद्या करते हैं।

गृहस्थ भी उभी प्रतिक्रमण का अनुरूप सामायिक करते समय अपने दोषों की आलोचना करके अपने चारित्र्य की शुद्धि कर सकते हैं। अथवा जिनमें भगवान् के सामने खड़े होकर या बैठ कर आलोचना पाठ पढ़ते हुए अपने मन की शुद्धि कर सकते हैं।

प्रत्येक स्त्री पुरुष प्रतिदिन सामायिक करते समय अथवा भगवान् के सामने खड़े होकर या बैठकर आलोचना पाठ पढ़ते हुए अपने मन की शुद्धि कर सकते हैं।

प्रत्येक स्त्री-पुरुष की प्रतिदिन सामायिक करने समय अथवा भगवान् के सामने खड़े होकर या बैठकर आलोचना पाठ अवश्य पढ़ना चाहिए। त्रिसप्त प्रमाद जनिन दोषों की शुद्धि होती रहे।

## आलोचना पाठ

दाता—वन्दे पाचा परमगुरु त्रीवागा जिनराज ।

करु गुड आलोचना शुद्धि करने के काज ॥१॥

सन्धी छ' चौन्ह मात्रा

मुनिये विन अरज हमारो । हम दाप क्रिय अति भारी ॥ तिनकी भव  
 निहृति बाध । तुम मरन लग जिनरार ॥२॥ न वे त चउ इही वा ।  
 मररनि मनि वे जावा । तिनही नहि कदणा धारा । निरन्द हूँ घात  
 विचारी ॥३॥ समरभे समारभ अरभ मन वचनन गान प्रारभ । वृत्त  
 कारित मोन करत प्रागति चतुष्टय धरिक् ॥ गन प्राठ जुइमि मेनत  
 अथ काने परठानत तिनही कहुँ बोवा कहुँकी तुम जान कदन—  
 जानी ॥४॥ विपरीन एकांत विन्यर । सग्य अज्ञान कुतयर । यग  
 हाय धार अथ कान वचन नां तार कहीन ॥६॥ कुगुरन गवा बीना  
 करत अथाकरि भाता । साविधि निश्यात्र वनाया चतुगति मधि तप  
 उपाया ॥७॥ तिन पुनि भूठ जु धारा परवतिनामा दृग जोरा । आरभ  
 पद्मिह नीना पनपाव जु वा विधि काना ॥८॥ मयग रगता छाननवा  
 पलु कान विपय सेशन को । बहु करत विच मनमानी कहुँ न्याप स्याप  
 न जानी ॥९॥ पत्र पत्र उदवर खाये मधु मांग मद्य विनयात्र । नहुँ  
 यष्टुभूल-गुणपाय विपमनसय सुजायी ॥१०॥ सुदवीग अभाय विनयाय  
 सो मी निगिनि भुजाये । कहुँ मन्त्रे नाराया उवा ल्या करि उर  
 भरायो ॥११॥ अनतानु जु यधी जाना प्रयासवान अत्रयासवानो ।  
 मवनन चौकडी मुनिय मव भे जु यीन मुनिय ॥१२॥ पन्हाय  
 करति रति गग । भय स्तानि निव सनाय ॥ पनवीस जु भ भय  
 हम । इनक वग पाप क्रिये हम ॥१३॥ निगवण पामन वग मुदा  
 मधि पोष नगा । किर जाति विपय बन धायो । जाना विष विपय  
 धायो ॥१४॥ विवदर निार विहारा इनम नान जन  
 दिन दवा घरा उठा विन नीधी वस्तु जु नान  
 सताया बहु विधि विनय उपजायो ।  
 विध्यामनि ध्याय गया है

दोष जु कीनी । भित भित अरु कमे पहिये नुपु ज्ञान विवै सब पश्ये  
 १७॥ हा हा ! मैं दुष्ट अपराधी त्रसजीवन राशि विराधी । चावरकी  
 जतन न कीनी उरम करुना नहि लाना ॥१८॥ पृथिवी बहु खोटा कराई ।  
 महलात्कि जागां चिनाई ॥ पुनि बिन गाल्यो जल डोल्हो पलात पवन  
 विनाल्यो ॥१९॥ हा हा ! मैं अत्या घारी, बहु हगितवाय जु विगारी ॥  
 तामधि जीवन के सदा हम राये घरि आनन ॥२०॥ हा हा ! परमाद  
 बसाई बिन रेखे गगनि जगई । तामध्य ते जीव जे आये, ते हू परलोक  
 सिधाये ॥२१॥ वीर्यो जन राति पिसाया इधन बिन सोधि जलाया ।  
 भाङ्ग न जागा तुझारी चिटियात्कि जीव विगारी ॥२२॥ जल छानि  
 जिवानी कीना मा हू पुनि डारि जु दानी । नहि जनघानव पहुँचाई ।  
 किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥ जलमलमोरिन गिरवायो । कृमिकुन बहु  
 घात करायो ॥ ननियन बिन घोर धुवाय । कोसनवे जीव मराये ॥२४॥  
 अनात्कि गोष करारु ताम जु जीव निसराई । तिनका नहि जतन  
 कराया गरिषान घुप डराया ॥२५॥ पुनि द्रव्य कमावन काज बहु  
 आरभ हिमा साज । वीये तिसनावन भारी करुणा नहि रच विचारो  
 ॥२६॥ ताको जु उदय अव आयो । नाना विधि माहि सतायो ॥ पर  
 भुजत जिय दुख पावे बधते कम करि गावे ॥२७॥ तुम जात केवल  
 पाता दुख दूर करो शिवगानी । हम तो तुम गरण लही है जिन नारन  
 बिरद सहा है ॥२८॥ तो गायपती इव होव मो भी दुखिया दुख खोवै ।  
 तुम तीन भुवन के स्वामी दुख मन्हु अतरजामी ॥२९॥ द्रोपदी का चीर  
 बढायो सीताप्रति कमल रचायो । अजन स जिय अकामी तुल मटा  
 अतरजामी ॥३०॥ मेरे अवगुन न बिनारा प्रभु अपना बिरद निहारो ।  
 सत्र दोषरहित करि स्वामी दुख मन्हु अतरजामी ॥३१॥ इगादिक पदवी  
 नहि चाहु विषयनि म नहि लुभाऊ । रागात्कि दोष हरीज परमात्म  
 निजपद दीज ॥३२॥

दोहा—दोष रहित जिनके जी निजपद दीये मोय ।

सब जीवन के सुख बर आनंद मंगल शाय ॥

अनुभव भाषिक पारसी जीहरि आप जिनद ।

य ही बर माहि दीजये चरन धरन आनन ॥३२॥

## वैराग्यभावना

(वज्रनाभि चक्रवर्ती)

वन राशि पल भोगरै क्या किमान जगभाहि ।  
स्या शक्रो नृप सुख कर धम विचारे नाहि ॥

जोगीरामा वा नरेद्र छन्द

इहमिध राज करै नरनायक भागै पुण्य शिवाला ।  
सुप्रसागर में रमत निरन्तर पाल न चाम्पा काला ॥  
पूक प्रिय शुभ कर्मगँतारे जेमकर मुनि चद ।  
देये ध्यागुण कं पश्यकन लावन अलि आनद ॥२॥  
सीन प्रदन्तिष्ठ द शिर नाया कर पूजा धुनि जाना ।  
साधुसमार विनय कर वैश्या चरननमें दिडि नीनी ॥  
गुण उपदरया धमशिरामणि सुन राजा वैरागी ।  
राज रमा रनितादिक च रम त रम प्ररम लारो ॥३॥  
मुनिमूरन कथनिनिश्चावना लगन भरम बुधिभागी ।  
भरतनभागम्बन्ध विचारया परत धरम अनुरागा ॥  
था समार महावन भावर धमन आर न आरै ।  
जामन भरन नरा य दाम नीन महादुग्य पावै ॥४॥  
रुधहूँ जाय नरक प्रिति भूर छुटन भेदन भारा ।  
कवहूँ पशु परनाय धरै तहूँ वर वधन भयकारी ॥  
सुरगतिमें परमशति तय राग उदय दुग्य होइ ।  
साधुपथाति अतक विपनिमय सर्व सुगरी नाहि राइ ॥५॥  
कोइ क ७ विद्याया विजय काइ अनिष्ट सयागी ।  
कोइ तीन दरिद्रा विगुचे काइ तनका रोगी ॥  
विमहा घर कलिहारी नारी कै बैरी सम भाई ।  
किमही के दुख बाहिर तीरि किमहा नर दुचिताइ ॥६॥  
कोइ पुत्र बिना मिल भूरै होय मरै सर रात्रै ।  
खोती सततिया दुग्य उपनै क्या प्राणी सुख सारै ॥  
पुण्य उदय त्रिनके तिनक भी नाहि स्या सुख माता ।

यह जगदात्म्य नभारथ दूते, मव दीर्घे दुग्धशता । ११  
 जो संसारविषै सुग्न हति तीर्थकर कथा त्यागी ।  
 काहना गिरमाधन वरत सनममां अनुरागे ॥  
 दह अवायन अधिर विनाशन यामें सार न पाड ।  
 सागरक नलमा शुचि कीन मो भो शुच न दाइ ॥१२॥  
 साग कुधागुभरा मनमूरत चाम लवगी तोह ।  
 अतर दम्यन या मम नगमे अतर अवायन का है ॥  
 नवमन्गार सत्रे निशिगार, नाम जिय दिन आवै ।  
 क्यादि उपाधि अनक जडां लह कोरसुधी सुग्न पारै ॥१३॥  
 पावन ता दुग्ध दाय करे अति पावन सुग्न उपजायै ।  
 दुर्जन दह स्वभाउ बराबर सुग्न कीति कदायै ॥  
 रासनजाग रह्य न थाभा विरचनजाग मर्ग है ।  
 यह लन पाय मलातय काँपे यामें सार यही है ॥१४॥  
 भाग सुर भवराग कदाउ अरी है नग पीक ।  
 धरम हाथ विपाक मलय अति मयन लार्मे नीक ।  
 वल्ल अगिनि विपय विरधरय य अधिक दुग्धदाइ ।  
 धमरतना चार चपल अति दुग्धतिपय मदाइ ॥१५॥  
 मोहडदय यह नाउ अमाना भाग भल कर जानै ।  
 ज्या का, जन पाय धतूरा सा मय कचन मानै ॥  
 ज्या ज्या भोग मजाग मनाहर मनभीक्षित नन पारै ।  
 सुग्धा नागिन था था डरै, लूर गहर की अति ॥१६॥  
 र्मे चर्कीपन पाय निरगर भोगे भाग घतरे ।  
 ता भा सनक भये नहि पूरन, भाग मनारथ मर ॥  
 राजममान मदा अघकारण वैरयदावनहारा ॥  
 वरथामम लक्ष्मी अति चाल याभा कीन परधारा ॥१७॥  
 मोहमहारिषु वैर विचारया, नगजिय मकट द्वार ।  
 धर कारागुह वनिता मनी परिजन नन रम्यगरे ॥  
 लक्ष्यगणजन जानघरण तप ये विपक दितकारी ।  
 ये ही सार असार शौर मय, यह चर्की चितपारो ॥१८॥

च्छादे चौद्वारतन नःनिधि, अह छोदे राग मारी ।  
 आदि छटारह घाद छाने धाराभी छात्र दार्थी ॥  
 द्वादि सपति बहुतरा र्धारणतृप्तमम एवारी ।  
 गीनि विघार नियोगी मुनर्का रात दिया अकभागा ॥१३॥  
 द्वाय निगहद अनक गुरनि मीग, भूषण यमन उतार ।  
 श्रीगुरुचरणधरि जिनमुदा पच महायग धारि ॥  
 धनि यह ममक मुवृद्धि जगात्म धनि यह धीररथारी ।  
 ऐसी सपति छोक पग धन जिन पद धाक हमारी ॥१४॥

दोहा

परिग्रहात् उतार सष धीना धारिण पथ ।  
 निम ररभाभे पिर भय यज्ञनाभि निरमथ ॥  
 इति श्री वज्रनाभि नम्रवर्तीनी धराय्य भावात् ।

सिद्धचक्र की स्तुति

(श्री व्याख्या वाचस्पति व मन्वन्तरान जी देही)

श्री सिद्धचक्र का पाठ करा जिन भ्राता ।  
 टाड मे शानी एव पापा मना रानी । टका ।  
 मना मुन्दरि हम गारी धी गानी पति सख दुनियागी से  
 नहि पडे धन नि नन व्यथित बहुवादी ॥ एव गानी ॥  
 जा पति का कष्ट मिटाउगी ता उभय लोक मुष पडनी ।  
 नहि जगावतम्यनवन निरन्त जिन ॥ एव पापा ॥  
 एव दिवस गई जिन धारि म गगत कर कति हरे उरन  
 फिर ता माधु निय य जिन्वा शो ॥ एव पापा ॥  
 बडी कर मुनिको नमस्कार निज निजा काी ककर ।  
 भरि अज नयन कह मुनि मां दुहा गना ॥ एव पापा ॥  
 बाके मुनि पुत्री धय परा श्री सिद्धचक्र सा लड का ।  
 नहि रहे कुष्ठ का तन व नन सिद्ध ॥ एव पापा ॥  
 मुन माधु वचन हवी मना नहि होय मुनि क बना ।  
 करक थडा श्री सिद्धचक्र

अब अब अठाई आया है उत्सव युग पाठ कराया है ।

सब के तन छिड़का मन हवा का पानी ॥ फल पायो०  
गन्धादक छिड़कत वसु तिन म नाँ रहा कुण्ड रिधिन तन म

भई सात शतर ५१ बाया स्त्रण समानी ॥ एन पायो०  
भव भोग भोगि योगीग भये धीपात कम हनि मान गय ।

दूज भव मना पाते शिव रजधाना ॥ फल पायो०  
आ पाठ करें मन अब तन म, वे दूज जाय भव नयन से ।

मथनन' मत करा विकल्प नहे जिनबानी ॥ फल पायो०

### चार रतन

साचा दव सोही जाम दाप वा न लस कोई

सागो गुरु बढ जाव ताहू नी न चाहू है ।

सो धम यहाँ जहा करुणा प्रधान फही

प्रथ जहाँ आदि अत एर मो निवाहू है ।

ये ही जग रतन चार इनकी परस्य पार

साचे लेहू भूठ डार नरभव कू साहू है ।

मानुष विवक विना पगु क समान गिता

सात याहि सात डीव पारनी सलाहू हू

### आरती

यह विधि मगत आरती कीज ।

एव परम पद भजि सुख लीज ॥ टेक ॥

प्रथम आरती भी जिनराग भव जल पार उत्तार जिहाजा

दूजी आरती सिद्धन करी सुमरण करत गिट भय फेरी ।

तीजी आरती सूर मुनिदा, जम मरण दुष करिदा

चौथी आरती धी उवजभाषा दगन लेखन पाव पनाया

पाँचवी आरती साधु तुम्हागे कुमत विनागन गिय अधिकारा

छठी ग्यारहू प्रतिभाधारी थावक यन्ने आनन्द करी

सातवी आरती भी जिनबाणा सागन स्वग मुनिदानी

उद्योगभाला धन निगव दिनी ६ ।

## श्री भगवान् पार्श्वनाथ जी की स्तुति

तुमसे लागे सगल, सेवा करना करण, पारस प्यारा ।  
मेरी मरी जो राहू हुआ ।

निश्चिन्त तुमको बू पण से मेहा गुरू ।  
जीवन साग, तरे चरणा में बाग इतारा ॥  
मेरी मरी ॥

बदलसेन क रात्र-दुनारे, सामाधी क मून प्राण प्यार ।  
सबसे मेहा सोदा, बग से मुह का माहा, संवण धारा ॥  
मेरी मरी ॥

इंद्र और चरणेन्द्र भी धारे देना तुमाराही भवन ग.प ।  
धारा पुरो सदा, दुख नहीं पाव कृपा, तेवच धारा ॥  
मेरी मेरी ॥

जगद दुसकी ली पगवाह नहीं है स्वर्ग सुख की भी साह नहीं है ।  
मेरी जामन भरण, शीवे ऐसा यजन, पारस प्यारा ॥  
मेरी मरी ॥

सासों बार तुम्हें दीस नवाऊ, जग क नाथ तुम्हें करे पार्श्व ॥  
पदों स्थापुन भया, दर्शन दिन ये जिना, सागे धारा ॥  
मेरी मेरी ॥